स्वर योग से दिव्य ज्ञान

स्वर-योग का रहस्य

स्वर-योग भारत की अति प्राचीन और शिरोमणि विद्या है। इसका आश्चर्यजनक फल और साधन की सरलता देखते हुए किसी समय में इस विद्या का जनता के हृदय पर साम्राज्य था किंतु समय के प्रभाव से इसके कितने ही आवश्यक अंग लुप्त हो गए। कहीं-कहीं क्षेपक मिल गए। आलस्य और अज्ञान के कारण साधन घट गए, जिन लोगों को ज्ञान था उन्होंने छिपाया। तदनुसार आज यह विद्या बड़े अपूर्ण और विकृत रूप में दृष्टिगोचर होती है। फिर भी इसके खंडहरों पर दृष्टिपात किया जाए तो आश्चर्य होता है कि योग के इस विशुद्ध वैज्ञानिक और चमत्कारिक अंग की परिपूर्ण शोध क्यों नहीं हो रही है ? ज्योतिष के फलित शास्त्र और भविष्य कथन में कुछ अधिक मिलावट हुई है और वर्तमान ज्योतिषी उसकी तह तक नहीं पहुँच पाते, तदनुसार उसके वचन अधिकांश में सत्य नहीं होते। स्वर-योग का वाह्य रूप कुछ-कुछ ज्योतिष से मिलता हुआ है। इसलिए लोग भ्रमवश इसे भी उसी कक्षा में पटकते हुए अनादर की दृष्टि से देखते हैं।

ज्योतिष के मुहूर्त प्रकरण पर इस युग में बड़े धार्मिक कटाक्ष किये जाते हैं और उसे उपहास एवं घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। कहते हैं कि सोमनाथ के मंदिर को लूटने के लिए जब लुटेरों ने चढ़ाई की और जब हिंदू राजा उनसे लड़ने को उद्यत हुए तो ज्योतिषियों ने उस समय युद्ध का मुहूर्त ठीक नहीं बताया एवं जब तक शुभ मुहूर्त आये तब तक के लिए उन्हें ठहरे रहने का आदेश दिया। राजा बेचारे मान गये, इसका लुटेरों ने पूरा-पूरा लाभ उठाया

और करोड़ों रुपयों की संपत्ति के उस मंदिर को लूट लिया। आज़ भी कोई वस्तु खरीदने, यात्रा करने आदि के स्वर्ण अवसर आते हैं, किंतु मुहूर्त का फरसा उस अवसर को टूक-टूक कर देता है। कई बार ससुराल में पति मृत्यु-शैया पर पड़ा रहने पर वधू अपने पितृगृह से उसके दर्शनों के लिए छटपटाती है, पर मुहूर्त का राक्षस सामने आ खड़ा होता है और जाने नहीं देता। पति की मृत्यु हो जाती है, अंतिम दर्शनों की लालसा में वह जीवन भर जलती है और पति भी मन मसोसकर अतृप्त इच्छाएँ लिए स्वर्ग सिधारता है। रोगी मृत्यु शय्या पर तड़फ रहा है, वैद्य जी का उसे देखने जाने का मुहूर्त ही नहीं बनता, आखिर वे नहीं जाते। बीमार असहाय मर जाता है। ऐसी घटनाएँ जन-समाज के मन में चोट पहुँचाती हैं और वे उस विज्ञान पर अश्रद्धा करने लगते हैं। प्रभु की इच्छा को कोई नहीं जानता। 'उन्हें जो कराना होगा, वही होगा' यह तत्त्वज्ञान बहुत ऊँची स्थिति पर लागू होता है। सांसारिक व्यवहारिक जीवन में इसे कोई एक क्षण के लिए भी स्वीकार नहीं करता। मनुष्य को कर्तव्य करने का प्राकृतिक अधिकार है। इस अधिकार पर जब किसी प्रकार का कोई प्रतिबंध लगाया जाता है, तो मनुष्य अपने को पराधीनता या कैदी अनुभव करता हुआ बहुत दुःखी होता है।

ज्योतिष के मुहूर्त-प्रकरण के पक्ष, विपक्ष में यहाँ हम कुछ भी विचार प्रकट नहीं कर रहे हैं, क्योंकि यह विषय इस पुस्तक के बाहर का है। यहाँ तो हमें स्वर-विज्ञान की महत्ता, सर्व-सुलभता और निर्दोषिता सिद्ध करनी है।

इस विज्ञान में किसी पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जाता, अतएव विरोध के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। चाहे किसी परिस्थिति, धर्म या सभ्यता के विचार रखने वाला मनुष्य हो, उसके विचार और कार्यों में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती। स्वर योग एक विशुद्ध वैज्ञानिक तत्त्वज्ञान है। वह बतलाता है कि

निखिल विश्व ब्रह्मांड में व्याप्त भौतिक शक्तियों से मनुष्य शरीर किस प्रकार प्रभावित होता है ? सूर्य, चंद्र अथवा अन्यान्य ग्रहों की चैतन्य रश्मियों द्वारा शरीर के परमाणुओं में किस प्रकार की चेतना उत्पन्न होती है ? शरीर की जब जैसी स्थिति हो तब उससे वैसा ही काम लेना चाहिए, यही स्वर योग का गूढ़ रहस्य है। इतना होते हुए भी यह मनुष्य की सृजन शक्ति में हस्तक्षेप नहीं करता, वरन् उसे प्रोत्साहित करता है। आधुनिक विचारधारा की दृष्टि से भी इस तरह यह विज्ञान किसी प्रकार का अंध-विश्वास उत्पन्न नहीं करता।

उदाहरणार्थ नीचे शिव स्वरोदय ग्रंथ के कुछ श्लोक दिए जाते हैं, जो बताते हैं कि स्वर योग मनुष्य के कर्तव्य में जरा भी देर या बाधा पहुँचाना स्वीकार नहीं करता। यदि स्थिति साधारण हो तो यह अच्छा ही है कि शरीर की सामयिक स्थिति से लाभ उठाया जाए, किंतु यदि कोई विशेष स्थिति है तो अपनी मनस्विता के आधार मनुष्य शरीर में स्थिति बाह्य प्रभाव को हटाकर उसे अनुकूल स्थिति में भी ला सकता है। चाहे कोई स्वर हो; नियत संख्या में पैर पटककर या चलित स्वरों के अंगों को प्रधानता देकर हर स्थिति में भी कार्य किया जा सकता है।

अत्यंत आवश्यक अवसर को एक क्षण के लिए भी खोना यह विज्ञान स्वीकार नहीं करता—

पाठक निम्न श्लोकों को ध्यानपूर्वक पढ़ें—

कुयोगो नास्ति हे देवि ! भवता वा कदाचन।
प्राप्ते स्वर बले शुद्धे सर्वमेव शुभं फलम।।

हे पार्वती ! इस स्वरोदय में कुयोग कभी नहीं होता, क्योंकि स्वर बल को शुद्ध कर लेने पर सब कार्य शुभ होते हैं।

वामं वा दक्षिणं वाऽपि यत्र संक्रियते शिवः।
कृत्वा तत्पादमादौ च यात्रा भवति सिद्धिदा।।

यदि यात्रा करनी हो तो जो भी दाहिना या बाँया स्वर चल रहा हो उसी चरण को आगे रखकर यात्रा करे, तो वह यात्रा सिद्धि देने वाली होती है।

चंद: समपद: कार्यो रविस्तु विषम: सदा।
पूर्ण पादं पुरुस्कृत्य यात्रा भवति सिद्धिदा।।

चंद्रमा का स्वर चलता हो तो समपद (२, ४, ६ आदि) आगे रखें (पटके) और यदि सूर्य का स्वर चलता हो तो विषमपद (१, ३, ५ आदि) आगे रखें। इस प्रकार यात्रा सिद्धि देने वाली होती है।

एक मत ऐसा भी है कि—

चंद्र बारे चतुष्पादं पंच पादस्तु भास्करे।
एवं च गमन श्रेष्ठं साधयेद्भुवनत्रयम्।।

चंद्र नाड़ी का स्वर चलता हो, तब बाँया पैर चार बार आगे रखकर और सूर्य स्वर चलते समय दाहिने पैर आगे रखकर जो गमन किया जाता है, वह तीनों लोकों में सिद्धि देता है।

पर दत्ते तथा ग्राह्ये गृहान्निर्गमनेऽपिच।
तदंगे वहते नाड़ी प्राग्यं तेन करांघ्रिणा।।

दूसरे को देने में, उससे ग्रहण करने में, घर से बाहर जाने में जिस अंग की नाड़ी चलती हो उसी हाथ व पैर को आगे करके कार्य करे तो—

न हानि: कलहो नैव क्रण्टकैर्नापि भिद्यते।
निवर्तते सुखी चैव सर्वोपद्रववर्जित:।।

न हानि हो, न कलह हो और न कंटक शत्रु से पीड़ित हो। वह सर्वथा सुखी और उपद्रवों से बचा रहे।

इन श्लोकों से स्वर-शास्त्र की अंतरात्मा प्रकट हो जाती है। स्वरों का अमुक प्रकार चलना शुभ और अमुक प्रकार चलना अशुभ है, इस प्रकार के प्रसंग इस पुस्तक में हैं। इसमें भी अंध-विश्वास के लिए राई-रत्ती भर स्थान नहीं है। 'शुभ' और

'अशुभ' शब्दों का भावार्थ केवल इतना ही है कि यह स्थिति शारीरिक धर्म के अनुकूल नहीं है। शरीर की अंतरंग दशा ठीक न होने पर स्वाभाविक ही है कि उसका परिणाम रोग, हानि, कलह, कष्ट अथवा असफलता के रूप में देखना पड़े, क्योंकि हर कार्य में सफलता तभी मिल सकती है, जब शरीर और मन प्रसन्न हों। 'शुभ' और 'अशुभ' एक प्रकार से हरी और लाल बत्ती के प्रतिनिधि हैं। वे मार्ग के साफ होने की सूचना मात्र देते हैं। जब 'अशुभ' स्वर चलते हों तो हमारा कर्तव्य है कि अपनी खराबियों की ओर विशेष ध्यान दें। उपचारों द्वारा उसे ठीक कर लें।

इन 'शुभ' 'अशुभ' शब्दों का कहीं लोग दूसरा अर्थ न लेने लगें, यह शंका शास्त्रकारों के मन में भी उठी है। यह भाग्य रूप है, अचल है, अनिवार्य है, ऐसा समझकर कोई मूर्ख 'किंकर्तव्यविमूढ़' न हो जाए और अनेक स्वाभाविक कर्तव्य धर्मों से हाथ धोकर निराश न बन जाए, इस आशंका को दृष्टि में रखा गया है। जरूरत थी कि लोग सावधानी सीखें, पर यदि वे भागयवाद पर उतर पड़े तो शास्त्र भी उनके लिए दूसरा आदर्श प्रस्तुत कर देता है।

यत्रांगे बहते वायुस्तदंगस्य करस्तलम्।
सुप्तोत्थितो मुखं त्पृष्ट्वा लभते वांछितम् फलम्।।

जिस अंग का स्वर चलता हो उसी अंग के हाथ की हथेली से शयन से उठकर, मनुष्य मुख का स्पर्श करे तो वांछित फल को प्राप्त होता है। यहाँ शास्त्रकार ने निराशा की अपेक्षा अपने सारे विज्ञान का वास्ता ही समेट लिया है।

मनोविज्ञानशास्त्र के जिन आचार्यों ने इस विषय पर विशेष विचार किया है, वे कहते हैं कि मनुष्य को दृढ़-विश्वासी और कर्तव्यनिष्ठ बनने का उपाय इससे बढ़कर आज तक नहीं निकल सका है। अमुक स्वर में अमुक प्रकार के कार्य सिद्ध होते हैं। इस प्रकार विश्वास कर लेने के उपरांत जब मनुष्य उसी स्वर में काम

करता है तो उसकी निष्ठा बहुत बढ़ जाती है और निष्ठा के अनुसार परिणाम उपस्थित होना अवश्यंभावी है। आत्म विश्वास को दृढ़ करने के लिए पश्चिमी मनोवैज्ञानिक एक ही लंगड़ा-सा उपाय ढूँढ़ सके हैं। वह यह कि शांतचित्त होकर इस प्रकार के विचार करना कि—'मैं बलवान् हूँ, मेरी इच्छा-शक्ति दृढ़ है, मैं इस कार्य में सफलता प्राप्त करूँगा' आदि। किंतु व्यवहारिक रूप में देखा जाता है कि इन शब्दों के रटने का बहुत ही कम वास्तविक प्रभाव पड़ता है, गुप्त मन बड़ा अबोध है। बालक की ही तरह जब तक उसे गोलियों की सहायता से गिनती न सिखाई जाए तब तक नहीं सीखता। हिसाब का सिद्धांत मात्र समझा देने पर बहुत ही कम विद्यार्थी उसे समझ सकेंगे जब तक कि क्रियात्मक रूप से उदाहरणों के साथ उन्हें न सिखाया जाए।

तंत्र की उपयोगिता मनोवैज्ञानिकों को इसलिए स्वीकार करनी पड़ी है कि उसमें शारीरिक क्रियाओं की सहायता से गुप्त मन को प्रभावित किया जाता है। जल में खड़े होकर या रात्रि को एकांत वन में बैठकर मंत्र जपने में शरीर की भी क्रियाएँ होती हैं। तदनुसार मन पर असर पड़ता है। इस सत्य से कोई इनकार नहीं कर सकता कि जितने अधिक शारीरिक प्रयत्न और मानसिक विश्वास के साथ जो मंत्र सिद्ध किया जाएगा, वह उतना ही फल देगा, अस्तु, केवल यह विचार करते हुए कदम बढ़ाना कि हमें 'सफलता मिलेगी' निर्बल है, बजाय इसके कि शुभ स्वर चलने पर पूर्ण विश्वास और उत्साह के साथ आगे बढ़ा जाए, क्योंकि इसमें मन के साथ एक शारीरिक क्रिया का भी समन्वय होने पर प्रभाव बहुत ही उत्तम होता है। विश्वास अधिक दृढ़ हो जाता है, सफलता की वह अधिक आशा करता है और मानव-शास्त्र के अनुसार आशा एवं इच्छा ही सफलता की जननी है।

इस प्रकार पाठक देखेंगे कि स्वरयोग मनोविज्ञान, भौतिक विज्ञान, खगोल विद्या और शरीर शास्त्र का सुंदर समन्वय है।

इसकी सरलता और महत्ता को देखते हुए ही भगवान् शंकर ने इसे सर्वोच्च स्थान दिया है। वे कहते हैं—

सर्व शास्त्र पुराणादि स्मृति वेदांगपूर्वकम्।
स्वर ज्ञानात्परं तत्त्वं नास्ति किंचिद्वरानने।।

संपूर्ण शास्त्र, पुराणादि, स्मृति और वेदांग आदि ये सब स्वर ज्ञान से श्रेष्ठ नहीं हैं। अर्थात् इनका ज्ञान भी स्वर के ही बल से होता है।

गुह्याद् गुह्यतरं सारमुपकार प्रकाशकम्।
इदं स्वरोदयं ज्ञानं ज्ञाननां मस्तके मणि।।

यह स्वर ज्ञान गुप्त से भी गुप्त वस्तु है, इसमें छिपा हुआ रहस्य है, उपकारों का प्रकाशक है और सब ज्ञानों में शिरोमणि है।

सूक्ष्मात्मसूक्ष्मतरं ज्ञानं सुबोधं सत्य पत्ययम्।
आश्चर्य नास्तिके लोके आधारस्त्वास्तिके जने।।

वह स्वरोदय ज्ञान सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, भले प्रकार जानने योग्य और सत्य का निश्चय कराने वाला है। जो जन नास्तिक हैं, उनको आश्चर्य दिखाता है और जो आस्तिक हैं, उनका आधार है।

स्वर संबंधी कुछ आवश्यक जानकारी

स्वरशास्त्र के अनुसार श्वास-प्रश्वास के मार्गों को नाड़ी कहते हैं। शरीर में ऐसी नाड़ियों की संख्या ७२०० है। इनको नसें न समझना चाहिए। स्पष्टतः यह प्राणवायु के आवागमन-मार्ग हैं। नाभि में इसी प्रकार की एक नाड़ी कुंडलों के आकार में है, जिसमें से (१) इड़ा, (२) पिंगला, (३) सुषुम्ना, (४) गांधारी, (५) हस्तिजिह्वा, (६) पूषा, (७) यशस्विनी, (८) अलंबुषा, (९) कुहू तथा (१०) शंखिनी नामक दस नाड़ियाँ निकलती हैं और यह शरीर के विभिन्न भागों की ओर चली जाती हैं। इसमें से पहली तीन प्रधान हैं—इड़ा को 'चंद्र' कहते हैं, जो बाएँ नथुने में है। पिंगला को 'सूर्य' कहते हैं, यह दाहिने नथुने में हैं। 'सुषुम्ना' को वायु कहते हैं, जो दोनों

नथुनों के मध्य में है। जिस प्रकार संसार में सूर्य और चंद्र नियमित रूप से अपना-अपना कार्य करते हैं, उसी प्रकार इड़ा पिंगला भी इस जीवन में अपना-अपना कार्य नियमित रूप से करती हैं। इन तीनों के अतिरिक्त अन्य सात प्रमुख नाड़ियों के स्थान इस प्रकार हैं—गांधारी नाक में, हस्तजिह्वा दाहिनी आँख में, पूषा दाहिने कान में, यशस्विनी बाएँ कान में, अलंबुषा मुख में, कुहू लिंग देश में और शंखिनी गुदा में। इस प्रकार शरीर के दसों द्वारों में दस नाड़ियाँ हैं।

हठ-योग में नाभि कंद अर्थात् कुंडलिनी का स्थान गुदा द्वार से लिंग देश की ओर दो अंगुल हटकर मूलाधार चक्र में माना गया है। स्वर-योग में वह स्थिति माननीय न होगी। स्वर-योग शरीरशास्त्र से संबंध रखता है और शरीर की नाभि मध्य केंद्र—गुदा मूल में नहीं, वरन् उदर की टुंडी में ही हो सकती है, इसलिए यहाँ नाभि-देश का तात्पर्य उदर की टुंडी मानना ही ठीक है। श्वास क्रिया का प्रत्यक्ष संबंध उदर से ही है।

अमेरिका के अद्वितीय योगी श्री बी० बी० एटकिनसन ने अपनी 'साइज ऑफ ब्रेथ' में इस बात पर बहुत जोर दिया है कि मनुष्य को नाभि तक पूरी सांस लेनी चाहिए। वे प्राणवायु का स्थान फेफड़ों को नहीं, नाभिक को मानते हैं। यद्यपि वायु के अधिक मात्रा में भरने का गोदाम फेफड़े ही हैं। फेफड़ों से छनकर ऑक्सीजन का सारा भाग नाभि के महत्त्वपूर्ण केंद्र तक पहुँचता है और उसके द्वारा शरीर का वास्तविक पोषण होता है। इस युग के धुरंधर शरीरशास्त्री श्री बरनर मेकडेफन अपने अनुसंधान के पश्चात् इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि वायु को फेफड़ों में भर लेने से साँस का काम पूरा नहीं हो जाता। साँस लेने का उपयुक्त तरीका यह है—उससे पेड़ू तक पेट सिकुड़ता और फैलता रहे एवं डायफ्राम का भी संचालन होता रहे। उपरोक्त दोनों कथनों का उद्‌देश्य यह है कि साँस का प्रभाव नाभि तक पहुँचना आवश्यक

है, इसके बिना स्वास्थ्य को भारी क्षति पहुँचती है। भारत के ऋषि-मुनि इस विज्ञान का अनुसंधान बहुत ही प्राचीन काल में कर चुके हैं कि फेफड़ों से साँस लेना अधूरा काम है और इससे जीवन का बहुत-सा विकास रुका रह जाता है। प्राणायाम की क्रियाओं का गुप्त रहस्य है कि नाभि की कुंडलिनी तक पूरी साँस पहुँचे और उसमें से निकलने वाली दसों नाड़ियों में उचित मात्रा में प्राण प्रवाहित हो और वे दसों द्वारों की ठीक प्रकार रक्षा करें। कई अधूरे शरीरशास्त्री शरीर की चीर-फाड़ में जब इन नाड़ियों को नाभि में से निकलता हुआ नहीं देखते तो स्वर-विज्ञान में वर्णन किए हुए नाड़ी विवरण पर अविश्वास करते हैं। उन्हें जानना चाहिए कि नाड़ी शब्द का अर्थ यहाँ खून बहाने वाली नसों से नहीं है। यह अत्यंत ही सूक्ष्म वायु-मार्ग हैं; जो यंत्रों की सहायता से नहीं, सूक्ष्म दृष्टि द्वारा देखे जा सकते हैं और उनके द्वारा होने वाले कार्यों की परीक्षा करके विश्वास प्राप्त किया जा सकता है।

ध्यान देने पर मालूम होता है कि दोनों स्वर एक साथ नहीं चलते अर्थात् दोनों नथुनों से एक ही समय में वायु-प्रवाह नहीं होता। हाँ, स्वर बदलते समय कुछ क्षण के लिए दोनों स्वर एक साथ चलने लगते हैं, उसे सुषुम्ना का प्रवाह कहते हैं। जिस प्रकार समुद्र की लहरों पर सूर्य और चंद्र का प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार हमारी श्वासों पर पड़ता है। प्रत्येक पखवारे (शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष) में श्वास की गति बदलती है और प्रायः एक नासिका से १ घंटा श्वास चलकर बदल जाती है। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को सूर्योदय के समय इड़ा नाड़ी अर्थात् चंद्र—बायाँ स्वर चलना चाहिए, उसी प्रकार कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को सूर्योदय के समय पिंगला अर्थात् सूर्य (दाहिना) स्वर चलना चाहिए। इसी तरह नियमपूर्वक कार्य होना शारीरिक और मानसिक स्थिति के बिल्कुल ठीक होने का सूचक है। जब शरीर निर्विकार है तो सब प्रकार आनंद रहेगा। यदि प्रकट या अप्रकट रूप से शारीरिक दशा ठीक

न होगी तो स्वभावतः कष्ट उठाना पड़ेगा। इसलिए स्वर-शास्त्र कहता है कि उपरोक्त प्रकार से नियमपूर्वक नाड़ी चलने पर मनुष्य को वह पक्ष में शुभदायक है और विपरीत दशा में अशुभ है।

यह न समझना चाहिए कि पंद्रह दिन बिल्कुल एक-सी गति से ही स्वर चलेगा। चंद्रमा की कलाओं का सूक्ष्म परिवर्तन प्रति पक्ष में कुछ परिवर्तन भी करता है। प्रतिपदा को नाड़ी का आरंभ होकर प्रतिदिन उपरांत सूर्योदय पर स्वर बदलेगा। जैसे शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को इड़ा नाड़ी १, २, ३, ७, ८, ६, १४ और पूर्णिमा इन तिथियों को सूर्योदय पर (बाईं) इड़ा नाड़ी रहेगी और शेष ४, ५, ६, १०, ११, १२ तिथियों को दाहिनी सूर्य नाड़ी चलेगी। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष में प्रति तीन दिन बाद सूर्योदय पर स्वर बदलेगा, यह नैसर्गिक नियम है।

चंद्र और सूर्य की अदृश्य रश्मियों का प्रभाव स्वरों पर पड़ता है। सब जानते हैं कि चंद्रमा का गुण शीतल और सूर्य का उष्ण है। शीतलता से स्थिरता, गंभीरता, विवेक प्रभृति गुण उत्पन्न होते हैं और उष्णता से तेज, शौर्य, चंचलता, उत्साह, क्रियाशीलता, बल आदि गुणों का आविर्भाव होता है। मनुष्य को सांसारिक जीवन में शांतिपूर्ण और अशांतिपूर्ण दोनों ही तरह के काम करने पड़ते हैं। किसी भी काम का अंतिम परिणाम उसके आरंभ पर निर्भर है, इसलिए विवेकी पुरुष अपने कामों को आरंभ करते समय यह देख लेते हैं कि हमारे शरीर और मन की स्वाभाविक स्थिति इस प्रकार के काम करने के अनुकूल है कि नहीं ? एक विद्यार्थी को रात्रि में इस समय पाठ याद करने के लिए दिया जाय, जबकि उसकी स्वाभाविक स्थिति निद्रा चाहती है तो वह पाठ को अच्छी तरह याद न कर सकेगा। यदि वही पाठ उसे प्रातःकाल की अनुकूल स्थिति में दिया जाय तो आसानी से सफलता मिल जाएगी। ध्यान, भजन, पूजा, मनन, चिंतन के लिए एकांत की आवश्यकता है, किंतु

उत्साह भरने और युद्ध में प्रवृत्त होने के लिए कोलाहलपूर्ण वातावरण के बाजों की घोर ध्वनि की आवश्यकता होती है। ऐसी उचित स्थितियों में किए हुए कार्य अवश्य ही फलीभूत होते हैं। इसी दृष्टिकोण के आधार पर स्वर-योगियों ने आदेश किया है कि विवेकपूर्ण और स्थायी, कार्य चंद्र-स्वर में किए जाने चाहिए। जैसे—विवाह, दान, मंदिर, कुआँ, तालाब बनाना, नवीन वस्त्र धारण करना, घर बनाना, आभूषण बनवाना, शांति के काम, पुष्टि के काम, शपथ खाना, औषधि देना, रसायन बनाना, मैत्री, व्यापार, बीज बोना, दूर की यात्रा, विद्यारंभ, धर्म, यज्ञ, दीक्षा, मंत्र, विद्याभ्यास, योग क्रिया आदि यह सब कार्य ऐसे होते हैं, जिनमें अधिक गंभीरता और बुद्धिपूर्वक कार्य करने की आवश्यकता है। इसलिए इनका आरंभ भी ऐसे ही समय में होना चाहिए, जब शरीर के सूक्ष्म-कोष चंद्रमा की शीतलता को ग्रहण कर रहे हों।

उत्तेजक, आवेश एवं जोश के साथ करने पर जो कार्य ठीक होते हैं, उनके लिए सूर्य-स्वर उत्तम कहा गया है। जैसे—क्रूरकर्म, स्त्रीभोग, भ्रष्टकार्य, युद्ध करना, देश का ध्वंस करना, विष खिलाना, शिकार खेलना, मद्य पीना, हत्या करना, काठ, पत्थर, पृथ्वी, रत्न आदि को तोड़ना, तंत्र-विद्या, जुआ, चोरी, व्यायाम, नदी पार करना आदि। यहाँ उपरोक्त कठोर कर्मों का समर्थन या निषेध नहीं है। शास्त्रकार ने तो एक वैज्ञानिक की तरह विश्लेषण कर दिया है कि ऐसे कार्य उस वक्त अच्छे होंगे जब सूर्य की उष्णता के प्रभाव से जीवनतत्त्व उत्तेजित हो रहा हो, शांतिपूर्ण मस्तिष्क से भली प्रकार ऐसे कार्यों को कोई व्यक्ति कैसे कर सकेगा ?

कुछ क्षण के लिए जब दोनों नाड़ी (सुषुम्ना) चलती हैं तब प्रायः शरीर संधि अवस्था में होता है। यह संध्याकाल है। दिन के उदय और अस्त को भी संध्याकाल कहते हैं। इस समय जन्म या मरणकाल के समान पारलौकिक भावनाएँ मनुष्य में जाग्रत्

होती है और संसार की ओर से विरक्ति, उदासीनता एवं अरुचि होने लगती है। स्वर की संध्या से भी मनुष्य का चित्त सांसारिक कार्यों से कुछ उदासीन हो जाता है और अपने वर्तमान अनुचित कार्यों पर पश्चात्ताप स्वरूप खिन्नता प्रकट करता हुआ, कुछ आत्म चिंतन की ओर झुकता है। यह क्रिया बहुत ही सूक्ष्म होती है और अल्पकाल के लिए आती है, इसलिए हम अच्छी तरह पहचान भी नहीं पाते। यदि इस समय परमार्थ चिंतन और ईश्वराधना का अभ्यास किया जाय तो निस्संदेह उसमें बहुत उन्नति हो सकती है, किंतु सांसारिक कार्यों के लिए यह स्थिति उपयुक्त नहीं है। इसलिए सुषुम्ना स्वर में आरंभ होने वाले कार्यों का परिणाम अच्छा नहीं होता, वे अक्सर अधूरे या असफल रह जाते हैं। सुषुम्ना की दशा में मानसिक विकार दब जाते हैं और गहरे आत्मिक भाव का थोड़ा-बहुत उदय होता है, इसलिए इस समय में दिये हुए शाप या वरदान अधिकांश फलीभूत होते हैं, *क्योंकि उन भावनाओं के साथ आत्मतत्त्व का बहुत कुछ* सम्मिश्रण होता है।

कहते हैं कि 'जैसा पिंड में वैसा ब्रह्मांड में' अर्थात् यह शरीर निखिल विश्व ब्रह्मांड का ही एक छोटा स्वरूप है। प्रकृति के नियमों में संसार की व्यवस्था चल रही है, उन्हीं पर शरीर की क्रियाएँ भी अवलंबित हैं। भगवान् सूर्यनारायण की उत्तरायण और दक्षिणायन दो गतियाँ हैं। उसी प्रकार शरीर में इड़ा, पिंगला श्वास की दो गतियाँ हैं। दिन और रात्रि के दो भेद भी इसी प्रकार हैं। दिन उत्तरायण है तो रात्रि दक्षिणायन। इड़ा उत्तरायण है तो पिंगला दक्षिणायन। जिस प्रकार उत्तरायण के महीनों में शीत की प्रधानता रहती है, उसी प्रकार चंद्र नाड़ी शीतल होती है और दक्षिणायन के महीनों में जिस प्रकार गर्मी की प्रधानता रहती है, उसी प्रकार सूर्य नाड़ी में उष्णता एवं उत्तेजना का प्राधान्य होता है।

स्वर बदलना

कुछ विशेष कार्यों के संबंध में स्वर-शास्त्रज्ञों के जो अनुभव हैं उनकी जानकारी सर्वसाधारण के लिए बहुत ही सुविधाजनक होगी। बताया गया है कि प्रस्थान करते समय चलित स्वर के शरीर भाग को हाथ से स्पर्श करके उसी चलित स्वर वाले कदम को आगे बढ़ाकर (और यदि चंद्र नाड़ी चलती है तो चार बार और सूर्य स्वर है तो पाँच बार उसी पैर को जमीन पर पटककर) प्रस्थान करना चाहिए। यदि किसी क्रोधी पुरुष के पास जाना है तो अचलित स्वर (जो स्वर न चल रहा हो) के पैर को पहिले आगे बढ़ाकर प्रस्थान करना चाहिए और अचलित स्वर की ओर उस पुरुष को करके बातचीत करनी चाहिए। इस रीति से उसकी बढ़ी हुई उष्णता को आपका अचलित स्वर की ओर का शांत भाग अपनी आकर्षक विद्युत् से खींचकर उसे शांत बना देगा और मनोरथ में सिद्धि प्राप्त होगी। गुरु, मित्र, अफसर, राजदरबार से जबकि बाम स्वर चलित हो तब वार्तालाप या कार्यारंभ करना ठीक है।

कई बार ऐसे अवसर आते हैं जब कार्य अत्यंत ही आवश्यक हो सकता है, किंतु उस समय स्वर विपरीत चलता है। तब क्या उस कार्य को किये बिना ही बैठे रहना चाहिए ? या कोई उत्तम अवसर हो तो उसे हाथ से निकाल देना चाहिए ? नहीं, ऐसा करने की जरूरत नहीं है। जिस प्रकार जब रात को निद्रा आती है किंतु उस समय कुछ काम करना आवश्यक होता है तो चाय आदि किसी उत्तेजक पदार्थ की सहायता से शरीर को चैतन्य करते हैं, उसी प्रकार हम कुछ उपायों द्वारा स्वर को बदल भी सकते हैं। नीचे कुछ ऐसे ही नियम लिखे जाते हैं—

(१) जो स्वर नहीं चल रहा है, उसे अंगूठे से दबाएँ और जिस नथुने से सांस चलती है, उससे हवा खींचे फिर जिससे

श्वास खींची है, उसे दबाकर पहले नथुने से यानी जिस स्वर को चलाना है उससे श्वास छोड़ें। इस प्रकार कुछ देर तक बार-बार करें। श्वास की चाल बदल जाएगी।

(२) जिस नथुने से श्वास चल रहा हो, उसी करवट लेट जाएँ तो स्वर बदल जाएगा। इस प्रयोग के साथ पहला प्रयोग करने से स्वर और भी शीघ्र बदलता है।

(३) जिस तरफ का स्वर चल रहा हो, उस ओर काँख (बगल) में कोई सख्त चीज कुछ देर दबाकर रखो तो स्वर बदल जाता है। पहले और दूसरे प्रयोग के साथ यह प्रयोग भी करने से शीघ्रता होती है।

(४) घी खाने से वामस्वर और शहद खाने से दक्षिण स्वर चलना कहा जाता है।

(५) चलित स्वर में पुरानी स्वच्छ रुई का फोहा रखने से स्वर बदलता है।

तिथि और वारों के अनुसार जब नियमित रूप से स्वर का उदय नहीं होता तब भी जैसे कि बीमारी की दशा में शरीर को रोग मुक्त करने के लिए चिकित्सा की जाती है, उसी प्रकार स्वर को ठीक अवस्था में लाने के लिए इन उपायों को काम में लाना चाहिए।

जिस ओर सूर्य-चंद्र हों अथवा हवा चल रही हो, उस ओर मुँह करके मल मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। सूर्य की ओर मुँह करके त्याग करने से सिर रोग तथा चंद्र या हवा की ओर त्याग करने से मूत्राशय के रोग होने की संभावना है। खड़े होकर पेशाब करने से रीढ़ में कमजोरी आती है। कदाचित् पाठक पाश्चात्य सभ्यता की ओर ध्यान आकर्षित करेंगे, किंतु जलवायु पर भी बहुत-से नियम निर्भर हैं, यह नहीं भूलना चाहिए।

पूर्व की ओर से जब वायु का प्रवाह हो, उस ओर से वायु जोर से नहीं खींचना चाहिए। इससे कफ का जोर बढ़ता है।

सारांश जिस ओर से भी वायु का प्रवाह हो, उस ओर मुँह करके दीर्घ श्वास नहीं लेनी चाहिए, क्योंकि हवा में कई प्रकार के कीटाणु उड़ा करते हैं और श्वास द्वारा शरीर में प्रवेश करके रोग उत्पन्न कर देते हैं।

यदि कोई विशेष प्रयोजन न हो तो भी तत्त्व और स्वरों की परीक्षा करते रहना चाहिए। इससे विशेष लाभ होते हैं। भगवान् शंकर कहते हैं—

चंद्र सूर्य समभ्यासं ये कुर्वन्ति सदा नराः।
अतीतानागत ज्ञानं तेषां हस्तगतं भवेत्।।

जो मनुष्य चंद्र और सूर्य स्वरों का सदैव अच्छी तरह अभ्यास करते हैं, उनका परोक्ष-ज्ञान हस्तगत हो जाता है अर्थात् गुप्त बातों को जानने लगते हैं।

स्वर-संयम से दीर्घ जीवन

ऊपर बताया जा चुका है कि श्वास निकलने का साधारण नाप १२ अंगुल है। परीक्षा करने के लिए एक लकड़ी के सिरे पर जरा सी अच्छी धुनी रुई लगा दो और उसको बारह अगुल दूर नाक की सीध में सांस छोड़ें, आपको रुई के रेशे हिलते हुए मालूम पड़ेंगे। यदि श्वास की लंबाई कम या अधिक होगी तो उतनी ही दूरी पर रुई के रेशे हिलेंगे। अधिक लंबा श्वास चलना हानिकर और कम लंबाई में चलना लाभप्रद है। सोते समय यह लंबाई ३० अंगुल हो जाती है। इसलिए ६-७ घंटे से अधिक सोना भी अच्छा नहीं है। भोजन करते समय यह गति २० अंगुल हो जाती है। इसलिए बार-बार भोजन भी न करना चाहिए। बीमारियों में श्वास की गति बढ़ जाती है। राजयक्ष्मा में तो रोगियों को प्रायः ७० अंगुल तक लंबा श्वास चलता है, उसे मृत्यु के उतने ही निकट समझना चाहिए।

प्रत्येक प्राणी का पूर्ण आयु प्राप्त करना उसकी श्वास-क्रिया पर अवलंबित है। पूर्व कर्मों के अनुसार जीवित रहने के लिए परमात्मा एक नियत संख्या में श्वास प्रदान करता है, वह श्वास समाप्त होने पर प्राणांत हो जाता है। इस खजाने को जो प्राणी जितनी होशियारी से खर्च करेगा, वह उतने ही अधिक काल तक जीवित रह सकेगा और जो इन्हें जितना व्यर्थ गँवाएगा, उतनी ही शीघ्र उसकी मृत्यु हो जायेगी। सामान्यतः हर एक मनुष्य दिन-रात में २१६,००० श्वास लेता है, इससे कम श्वास लेने वाला दीर्घजीवी होता है, क्योंकि अपने धन का जितना कम व्यय होगा, उतने ही अधिक काल तक संचित रहेगा। हमारी श्वास की पूँजी की भी यही दशा है। विश्व के समस्त प्राणियों में जो जीव जितनी कम श्वास लेता है, वह उतने ही अधिक काल तक जीवित रहता है। नीचे की *तालिका से इसका स्पष्टीकरण हो जाता है।*

नाम प्राणी		श्वास की गति प्रति मिनट		पूर्ण आयु
खरगोश	...	३८ बार	...	८ वर्ष
बंदर	...	३२ बार	...	१० वर्ष
कुत्ता	...	२६ बार	...	१२ वर्ष
घोड़ा	...	१६ बार	...	२५ वर्ष
मनुष्य	...	१३ बार	...	१२० वर्ष
साँप	...	८ बार	...	१००० वर्ष
कछुआ	...	५ बार	...	२००० वर्ष

साधारण काम-काज करने में १२ बार, दौड़-धूप करने में १८ बार और मैथुन करते समय छत्तीस बार प्रति मिनट के हिसाब से श्वास चलती है, इसलिए विषयी और लंपट मनुष्य की आयु घट जाती है और प्राणायाम करने वाले योगाभ्यासी दीर्घकाल तक जीवित रहते हैं। यहाँ यह न सोचना चाहिए कि चुपचाप बैठे रहने से कम सांसें चलती हैं, इसलिए निष्क्रिय बैठे रहने से आयु बढ़ जायगी। ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि निकम्मे बैठे रहने से शरीर

के अन्य अंग निर्बल, अशक्त और बीमार हो जाएँगे, तदनुसार उनकी श्वास का वेग बहुत बढ़ जायगा। इसलिए शारीरिक अंगों को स्वस्थ रखने के लिए परिश्रम करना आवश्यक है, किंतु शक्ति से बाहर परिश्रम भी नहीं करना चाहिए।

चीन के पेकिंग शहर में एक वृद्ध पुरुष से, जिसकी आयु लगभग २५० वर्ष थी, लोगों ने उसके दीर्घ जीवन का कारण पूछा तो उसने मुख्य तीन बातें बताईं। वृद्ध पुरुष ने कहा—(१) मैं अधूरा सांस नहीं छोड़ता, वरन् नाभि तक पूरी वायु खींचता हूँ। (२) कभी झुककर नहीं बैठता, अपने मेरुदंड को सीधा रखता हूँ। (३) मस्तिष्क में उत्तेजक और दूषित विचारों को नहीं आने देता। वास्तव में यह तीनों नियम स्वर योग के अंतर्गत हैं और बड़े महत्त्व के हैं। नाभि तक पूरा श्वास लेने पर एक प्रकार से कुंभक हो जाता है और श्वास की संख्या घट जाती है। मेरुदंड के भीतर एक प्रकार का तरल जीवन-तत्त्व प्रवाहित होता रहता है, जो सुषुम्ना को बलवान् बनाए रखता है, तदनुसार मस्तिष्क की पुष्टि होती रहती है। यदि मेरुदंड को झुका हुआ रखा जाय तो उस तरल तत्त्व का प्रवाह रुक जाता है और निर्बल सुषुम्ना मस्तिष्क का पोषण करने से वंचित रह जाती है। दूषित विचारों, क्रोध, शोक आदि के वेग से श्वास की गति तीव्र हो जाती है, जो कि आयु को क्षीण करने का प्रधान कारण है। स्वर विज्ञान मृत्यु की विवेचना करता हुआ बतलाता है कि जब हम श्वास लेते हैं तो प्रायः दस अंगुल लंबी होती है और जब निकलती है तो १२ अंगुल होती है अर्थात् आने की अपेक्षा जाने में दो अंगुल अधिक होते हैं। हर आदमी जानता है कि जब आमदनी से खर्च अधिक होता है तो एक न एक दिन टाट उलट ही जायगा और दूकान फेल हो जायगी। बस, यही मृत्यु है।

स्वर विज्ञान इस बात पर बहुत जोर देता है कि श्वास सदा नाक से ली जाए। जिसे मुँह से श्वास लेने की आदत हो, वह उसे

छोड़ दे, तब आगे का अभ्यास करे। श्वास लेने के अवयवों की रक्षा करने के लिए प्रकृति ने नासिका को ही प्रधान द्वार बनाया है। जो वायु हम खींचते हैं, उसमें बहुत-से धूलकण तथा रोग-कीट मिलते हैं एवं बाहरी सर्दी-गर्मी का प्रभाव भी होता है। यदि ऐसी वायु ज्यों की त्यों फेफड़ों में पहुँचे तो उस कोमल अवयव को हानि पहुँचाए बिना न रहेगी। मूँछ के बालों में धूल के बड़े-बड़े कण अटक जाते हैं और उसकी मोटी-सी सफाई हो जाती है। इसके बाद नाक के बालों में हवा छनती है। नाक में एक प्रकार की श्लेष्मा रहती है। दो बार छनी हुई वायु के बाद भी जो बारीक कण रह जाते हैं, उन्हें यह श्लेष्मा चिपका लेती है। नाक के खुरंट वायु का छटा हुआ मैल ही समझना चाहिए। इसके बाद वह वायु मस्तिष्क से होकर आने वाली श्वास नलियों की यात्रा करके फेफड़े तक पहुँचती है। इस यात्रा में सिर की गर्मी के हिसाब से उसका तापमान भी ठीक हो जाता है। इस प्रकार नाक द्वारा साँस लेने पर वायु निर्मल होकर फेफड़ों में पहुँचती है, किंतु मुँह से साँस ली जाए तो छानने की व्यवस्था नहीं हो पाती। दूसरे मुँह से फेफड़े निकट होने के कारण तापमान भी ठीक नहीं होता, तदनुसार मुँह द्वारा ली गई साँस फेफड़ों को भारी हानि पहुँचाती है। यहाँ तक कि श्वास के अवयवों में प्रायः सूजन आ जाती है और नाक के नथुनों से कम काम लिए जाने के कारण वे साफ नहीं रहते और नासिका संबंधी अनेक रोग हो जाया करते हैं।

सोते समय चित्त होकर न लेटना चाहिए, इससे सुषुम्ना स्वर चलकर विघ्न पैदा होने की संभावना रहती है। ऐसी दशा में अशुभ तथा भयानक स्वप्न दिखाई पड़ते हैं, इसलिए भोजनोपरांत प्रथम बाएँ, फिर दाहिने करवट लेटना चाहिए। भोजन के बाद कम से कम १५ मिनट आराम किए बिना सफर करना भी उचित नहीं है।

शीतलता से अग्नि मंद पड़ जाती है और उष्णता से तीव्र होती है, वह प्रभाव हमारी जठराग्नि पर भी पड़ता है। सूर्य-स्वर में

पाचन शक्ति की वृद्धि रहती है, अतएव उसी स्वर में भोजन करना उत्तम है। इस नियम को सब लोग जानते हैं कि भोजन के उपरांत बाएँ करवट से लेटे रहना चाहिए। उद्‌देश्य यही है कि बाएँ करवट लेने से दक्षिण स्वर चलता है, जिससे पाचन शक्ति प्रदीप्त होती है।

हमें चाहिए कि नींद खुलने पर जब बिस्तर से उठने लगें तो देखें कि कौन-सा स्वर चल रहा है ? चलित स्वर की हथेली अपने मुँह पर फेरकर, उसके दर्शन करके पूरक श्वास से अर्थात् श्वास को अंदर लेते समय उसी चलित स्वर वाले पाँव को बिस्तर से नीचे रखकर उठें। ऐसा करने से शरीर का आलस्य चला जायेगा, फुर्ती आएगी और दिन भर मन प्रसन्न रहेगा। चलते हुए स्वर का शरीर पर अधिकार होता है, उस इन क्रियाओं द्वारा थोड़ा उत्तेजित कर देने पर शरीर में नव चैतन्य का उदय हो जाता है।

भोजन करके तुरंत ही मूत्रत्याग करना चाहिए, इससे कोई बीमारी नहीं होने पाएगी। पेशाब बाएँ स्वर में और मलत्याग दाहिने स्वर में करना चाहिए। हाँ, शौच के समय पेशाब भी दाहिने स्वर में करने में दोष नहीं है। पाठक इसे केवल कपोल-कल्पित न समझकर इसके लाभ की परीक्षा करें। दाहिने स्वर में त्यागे हुए और बाएँ स्वर में त्यागे हुए मूत्रों को अलग-अलग शीशियों में रखकर परीक्षा कराई जाय तो मालूम होगा कि बाएँ स्वर पर पेशाब अधिक स्वस्थ है और दाहिने स्वर वाले में अनेक दोषों का समावेश है। यह शरीर-शास्त्र का प्राकृतिक नियम है। एक वर्ष से कम आयु के बालक को देखिये, जब वह पेशाब करेगा तो बायाँ स्वर चलेगा और जब पाखाना फिरेगा, तब दक्षिण स्वर चलेगा। आरंभ में संभव है कुछ कठिनता प्रतीत हो, किंतु एक-दो सप्ताह के अभ्यास से स्वभावतः ठीक समय पर ठीक स्वर चलने लगेगा।

स्वर को बदलने की सरल रीति

जब श्वास-प्रश्वास क्रिया में विपरीतता आ रही हो तो इसे शरीर और मन के लिए अशुभ समझते हुए प्रतिकार का उपाय ढूँढ़ना चाहिए। ऐसी दशा में आहार-विहार में अत्यंत ही सावधान रहना जरूरी है। साथ ही श्वास की गति भी ठीक मार्ग पर लाने का प्रयत्न करना चाहिए, ताकि शरीर की गर्मी, सर्दी सम मात्रा में व्यवस्थित हो जावे। स्वर बदलने के लिए पाँच उपाय इस पुस्तक में अन्यत्र बताये गए हैं, परंतु दैनिक कामकाजों में लगे रहकर भी स्वर बदलने का एक तरीका बहुत आसान है। वह यह है कि एक नथुने में ठीक आ सकने योग्य साफ रुई की एक गोली बनावें और जरा-से स्वच्छ कपड़े में उसे रखकर सुई से सी दें, ताकि रुई के रेशे इधर-उधर न निकले रहें। चलते हुए स्वर को बदलना है तो उसी नथुने में यह गोली लगा लेनी चाहिए, थोड़ी देर में स्वर बदल जाएगा। गोली में गंदगी आ जाती है, इसलिए इसे फेंक देना चाहिए। दूसरी बार के लिए रख छोड़ना ठीक न होगा। जिन्हें मस्तिष्क संबंधी कोई रोग हों, उन्हें इन गोलियों का प्रयोग न करके अन्य उपायों से स्वर बदलना चाहिए।

स्वास्थ्य का प्राणायाम

श्री पं० भोजराज जी शुक्ल एक स्थान पर लिखते हैं, जिस आसन का अभ्यास हो, उसी आसन को सुखपूर्वक लगाकर अपनी रीढ़ को तना हुआ रखो। किसी ओर को हिले-डुले नहीं। ठोढ़ी को छाती से लगाकर दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर जमाओ तथा हाथ के अँगूठे से दाहिने नथुने को दबाकर बाएँ नथुने से वायु खींचकर उदर में धारण करो, पेट में थोड़ी देर वायु को रोके रहो तथा अनामिका और कनिष्ठका अंगुलियों से बाएँ नथुनों को भी बंद कर लो, साथ ही प्रणव (ॐ) का जप करते रहो अथवा जो तुम्हारा इष्ट-मंत्र हो उसे जपते रहो, इसे अंतर कुंभक कहते हैं।

वायु को थोड़ी ही देर रोको और फिर दाहिने नथुने से अंगूठा हटाकर उदरस्थ वायु को अत्यंत धीमी गति से बाहर निकालकर बाहर ही रोक दो, अंगूठे से दाहिने नथुने को फिर बंद कर लो, इसे बाह्य कुंभक कहते हैं, प्रणव का जप बराबर करते रहो। थोड़ी देर बाद दोनों नथुनों को खोलकर वायु धीरे-धीरे पेट में भर लो, यह एक प्राणायाम हुआ। इस प्रकार कम से कम तीन प्राणायाम अवश्य करने चाहिए तथा धीरे-धीरे अभ्यास करके वायु के निरोध की शक्ति बढ़ानी चाहिए। अति हठ करके वायु को रोकने में कुपित हो जाने का भय रहता है, जिसके कारण हिचकी, दमा, खाँसी, कान और सिर के रोग उत्पन्न हो सकते हैं। यदि प्राणायाम नियमपूर्वक, सामर्थ्यानुसार, स्वच्छ वायु के स्थान में किया जाएगा, तो इससे जठराग्नि तीव्र होकर स्वास्थ्य तथा आयु की वृद्धि होगी। उपरोक्त प्राणायाम विधि के विपरीत भी रेचक-पूरक क्रियाएँ करनी चाहिए अर्थात् दाहिने नथुने से वायु खींचकर बाएँ नथुने से निकाल देना चाहिए। पूरक-कुंभक और रेचक करते समय प्रणव (ॐ) का जप दस बार करते रहना चाहिए। पंद्रह दिन अभ्यास कर लेने के पश्चात् बीस बार तथा एक मास पश्चात् तीस बार जप करना चाहिए। इसी प्रकार क्रमशः जप संख्या बढ़ाते रहना चाहिए।

वीर्य रक्षक प्राणायाम

श्री सरस्वती सहोदर ने वीर्यरक्षा के लिए एक प्राणायाम का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—आसन इस प्रकार जमाकर बैठो, जिसमें बाएँ पैर की एड़ी गुदा-द्वार और अंडकोष के बीच में रहे। उसे तुम ऐसा जानो कि यह बैठने की गद्दी ही है, दाहिने पैर की एड़ी मूत्र-नली की जड़ में ऊपर से लगाओ। ऐसे बैठने में पहले बहुत दिक्कत होगी, इसलिए तोंद के नीचे एक छोटा तकिया रखो। ऐसा करने से बराबर आसन जमेगा और पैरों की एड़ी पर दबाव भी पड़ेगा, जिसकी कि इस आसन में बड़ी आवश्यकता है। इस रीति से कुछ दिन तक अभ्यास डालने पर बिना तकिया बैठ

सकोगे। आसन लगाने पर पैर का ऊपरी भाग नीचे की ओर निचला भाग ऊपर की ओर आसानी से नहीं होता। अच्छी तरह ख्याल रखो कि पैरों की उँगलियों पर आसन न जमने पाये, आसन पूर्णतया जमने पर दोनों पैरों के मणिबंध परस्पर में मिल जाते हैं, यही बराबर आसन की पहचान है। यह भी बराबर ख्याल में रहे कि जहाँ पर एड़ी लगाई जाती है, वहाँ पर एड़ियों का अच्छी तरह से दबाव पड़ना चाहिए। इस प्रकार आसन जमने पर देखें कि कौन से नथुने से साँस निकलती है ? जिस नथुने से साँस न निकलती हो, उस नथुने को हाथ के अंगूठे से बंद कर दें और जिस नथुने से साँस बाहर निकलती हो, उस नथुने से धीरे-धीरे साँस भीतर खींचे। साँस खींचने पर उसी समय गुदा-द्वार संकुचित कर लें, फिर प्रयोग संपूर्ण हुए बिना प्रसारित न करें। पहले पहल इच्छा तो होगी कि गुदा-द्वार ढीला और रहा भी न जाएगा, पर यह पक्का ख्याल रखें कि इस क्रिया को काबू करना है। गुदा-द्वार संकुचित कर लेने के बाद दोनों नथुने बंद कर लें। पेट के भीतर जो श्वास खींच रही है, उसे बाहर न छोड़ें और पेट में गति दो अर्थात् मूत्रनली के द्वारा कोई पदार्थ पंप की तरह पेट से खींच रहे हैं इस प्रकार पेट छोटा-बड़ा करें; इस तरह क्रिया उतने समय तक करें, जितने समय तक श्वास भीतर रख सकें। श्वास छोड़ते समय पेट की गति बंद कर दें और गुदा-द्वार पहले की तरह संकुचित ही रखें। पेट में गति देते समय भी गुदा संकुचित ही रहे। गति बंद करके जिस नथुने से साँस भीतर न ली हो उस नथुने से साँस बिलकुल धीरे-धीरे बाहर छोड़ें।

इस रीति से एक प्राणायाम हुआ। इसी प्रकार तीन प्राणायाम एक बैठक में करो। एक महीने के बाद ५ प्राणायाम एक बैठक में करो फिर धीरे-धीरे १५ प्राणायाम तक एक बैठक में करने की आदत डालो। इसका असली मतलब यही है कि एक बैठक में १०-१५ प्राणायाम करने तक गुदा-द्वार संकुचित रखने की शक्ति

बढ़े, तब साधन सिद्ध हुआ जानना चाहिए। इस प्रयोग द्वारा आरोग्य तो प्राप्त होता ही है साथ ही वीर्य भी वश में होता है। स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, प्रमेह आदि के लिए बहुत लाभदायक है।

शीतकारी कुंभक

शांतिपूर्वक सीधे बैठकर होठों को काक-चोंच वृत्ति बनाकर श्वास खींचो और फिर मुँह बंद कर लो एवं हवा को इस प्रकार गले से नीचे उतारो जैसे कि पानी के घूँट पीते हैं। थोड़ी देर बाद श्वास को धीरे-धीरे नाक द्वारा निकाल दो। इस क्रिया को प्रातः, सायं या रात्रि को करना चाहिए। एक समय में पाँच-सात बार करना पर्याप्त होगा। इससे रक्त की शुद्धि होती है, शूल तथा पेट की अन्य बीमारियों के लिए यह क्रिया लाभदायक है। सारांश यह है कि सरल क्रिया होते हुए भी इसका लाभ बहुत अधिक है। हाँ, अशुद्ध स्थान में अथवा भोजन के तीन-चार घंटे उपरांत तक यह क्रिया न की जाए।

शीतल कुंभक

सीधे पालथी मारकर (पद्मासन उत्तम) है। उस ओर मुँह करके बैठो, जिस ओर शुद्ध वायु का प्रवाह हो और ओठों को इस प्रकार आगे बढ़ाओ जैसे सीटी बजाते समय बढ़ाया जाता है और मुँह बंद करके नथुनों से श्वास खींचो। इससे रक्त शुद्ध होता है। दिन भर में तीन बार यह क्रिया की जाए, किंतु एक बार १० मिनट से अधिक न हो।

अग्नि निवारण कौशल

योगी गुरु से संग्रहीत

प्रायः प्रतिवर्ष आग लगाकर कितनों का ही भारी नुकसान हुआ करता है। ऐसे समय स्वर योग के एक आश्चर्यजनक प्रयोग का अनुभव किया जाए।

आग लगने पर जिस तरफ उसकी लपट जाये, उसी तरफ खड़े होकर जिस नथुने से श्वास निकले, उसी नथुने से हवा खींचकर नाक से ही पानी पीएँ। उसके बाद ७ रत्ती जल निम्नलिखित मंत्र से फूँककर आग में डाल दें तो अवश्यमेव अग्नि-प्रकोप बहुत जल्द शांत हो जायगा। मंत्र इस प्रकार है—

'उत्तरस्याँचदिग् भागे मारीचोः नाम राक्षसः।
तस्य मूत्रपुरीषाभ्याँ हुतः वह्नि स्तंभ स्वाहा।।'

स्वर परिवर्तन के हानि-लाभ

किस समय कौन-सा स्वर चलना चाहिए, इसकी जो मर्यादाएँ बाँधी गई हैं, वह चंद्र-सूर्य की चाल के अनुसार शरीर के ऊपर जो प्रभाव पड़ता है, उसके आधार पर हैं। नियत समय पर नियत स्वर का चलना आरोग्यता-सूचक है। जब इनमें गड़बड़ होती है तो इससे विभिन्न प्रकार की हानियाँ हो सकती हैं, जिनका कुछ उल्लेख नीचे किया जाता है—

केवल पक्ष की तिथियों में ही सूर्य-चंद्र द्वारा यह स्वर परिवर्तन नहीं होता, वरन् अन्य ग्रहों का भी प्रभाव उन पर अपना असर डालता है, तदनुसार कुछ वारों में भी विशिष्ट परिवर्तन होता है। चंद्र, बुध, गुरु और शुक्र इन वारों में और विशेषकर शुक्ल पक्ष में बाईं नाड़ी चलना शुभ है। रवि, मंगल और शनि इन वारों में और विशेषकर कृष्ण पक्ष में दक्षिण नाड़ी चलना शुभ है। रविवार को सूर्योदय पर सूर्य नाड़ी और चंद्रवार को चंद्र नाड़ी का चलना शुभ माना जाता है। आकाश स्थित प्रधान ग्रहों का प्रभाव उनकी, अपनी तथा पृथ्वी की चाल के अनुसार उस भूमंडल पर आता है। अपनी धुरी पर घूमने के अतिरिक्त एक निर्धारित मार्ग से पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा के लिए भी चलती रहती है। इस मार्ग में प्रधान ग्रहों की कुछ महत्त्वपूर्ण किरणें प्रायः एक के बाद एक स्पष्ट रूप से आगे आती हैं, अन्य दिनों में वे किरणें अन्य ग्रहों की आड़ में

रुक जाती हैं। खगोल विद्या के इस अत्यंत सूक्ष्म तत्त्वज्ञान को समझते हुए प्राचीन विद्वानों ने वारों के नाम उनके अधिपति ग्रहों की प्रमुखता के आधार पर रखे थे। सूर्य और चंद्र नाड़ियों पर शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष की ऋण-धन विद्युत् एवं वारों के अधिपति ग्रहों का भी प्रभाव स्वर पर होता है, वह प्रातःकाल देखा जा सकता है। उपरोक्त वारों में स्वर नाड़ियों की भिन्नता दृष्टिगोचर होने का कारण मनुष्य शरीर पर पड़ने वाले अन्य ग्रहों का सूर्य-चंद्रयुक्त प्रभाव ही है। जो ग्रह सूर्य से ममता रखते हैं, वे सूर्य-स्वर को और जो चंद्र से ममता रखते हैं, वे चंद्र को प्रभावित करते हैं। शुभ-अशुभ शब्दों का प्रयोग इस संबंध में इसलिए किया गया है कि यदि शरीर में सजीवता होगी, तो वह ग्रहों के प्रभाव को ठीक ग्रहण करेगा और यदि निर्बल, निस्तेज एवं निर्जीव होगा तो अपनी जड़ता पर कायम रहकर प्रभावित न होगा। स्पष्ट है कि शरीर का सजीव होना शुभ और शक्तिहीन होना अशुभ माना जाता है, क्योंकि इसी के ऊपर अन्य कार्यों की सफलता और असफलता निर्भर है। इसी दृष्टि से चंद्रस्वर में सूर्योदय का होना और सूर्य-स्वर में अस्त होना श्रेष्ठ माना गया है। शुक्लपक्ष की दौज को नवीन चंद्र का दर्शन चंद्र-स्वर में होना भी शुभसूचक समझा जाता है।

यदि चंद्रमा के स्वर में सूर्य का उदय हो और सूर्य के स्वर में अस्त हो तो उस विपरीत समय में कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता।

जिस समय सूर्य के उदय में सूर्य-चंद्रमा के उदय में चंद्रमा का स्वर हो तो दिन व रात्रि में अशुभ और शुभ सब काम सिद्ध होते हैं।

यदि शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को दाहिना स्वर चले तो उस पक्ष में गर्मी का कोई रोग, कलह अथवा हानि होने की आशंका रहती है। यदि कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को बायाँ स्वर चले तो उस

पक्ष में सर्दी रोग अथवा अन्य प्रकार के कष्ट होने की संभावना रहेगी। यदि लगातार दोनों पक्ष इसी प्रकार उलटे स्वर चलें तो दूने कष्ट का भय होता है। यदि तीन पक्ष बराबर इस प्रकार की विकृति रहे तो तिगुने कष्ट का भय रहता है।

बताया जा चुका है कि प्रत्येक स्वर को एक घंटा चलकर बदल जाना चाहिए। परंतु जब वह अधिक काल चलता है तो हानिकर है। यदि बायाँ स्वर लगातार १७ घड़ी चले तो शरीर को कष्ट होता है, १२ घड़ी चले तो शत्रु बढ़ते हैं। एक, दो या तीन दिन चलता रहे तो बीमारी होती है। पाँच दिन चलने पर उद्योग और एक साल चलने पर धन का नाश होता है, किंतु कभी-कभी अधिक समय तक स्वर चलने पर उसके अंतर्गत कुछ ऐसी आंतरिक प्रतिक्रियाएँ भी होती हैं, जिनसे हानि में भी लाभ का प्रादुर्भाव होता है। जैसे यदि वाम स्वर लगातार ४ घड़ी चले तो किसी अचिंत्य वस्तु की प्राप्ति, ८ घड़ी चले तो सुख, १४ घड़ी चले तो प्रेम, मैत्री आदि की प्राप्ति, एक दिन रात्रि चले तो ऐश्वर्य-वैभव आदि की उपलब्धि। ४, ८, १२ या २० दिन-रात्रि-दिन-चंद्र स्वर चलता रहे तो बड़ी आयु तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

यदि दक्षिण स्वर लगातार ४ घड़ी चलता रहे तो वस्तुहानि, २१ घड़ी चलता रहे तो मित्र का बिछोह और एक दिन-रात्रि चलता रहे तो आयु क्षीण होती है। चंद्रस्वर शीतल होने के कारण उसके अधिक समय चलने पर बीच-बीच में कुछ लाभदायक क्षण भी आ जाते हैं, किंतु सूर्य स्वर में ऐसी बात नहीं है। बढ़ी हुई उष्णता से जीवन-रस सूखेंगे ही और अहित ही होगा। ऊपर कुछ घड़ियों तक सूर्य स्वर चलने को अनिष्ट फल बताया गया है। यदि यह घड़ियाँ बढ़ने लगें तो प्रभाव और भी अनिष्टकर होता है और शरीर को इतनी क्षति पहुँचती है कि मृत्युकाल निकट आ जाता है। लिखा है कि यदि ८ प्रहर तक दक्षिण स्वर चलता रहे तो तीन वर्ष बाद, १६ प्रहर चले तो दो वर्ष बाद और तीन दिन-रात

चले तो एक वर्ष बाद मृत्यु समझनी चाहिए। बस, दिन-रात यही स्वर चलता रहे तो ३ मास में मृत्यु हो जाती है।

यहाँ मृत्यु के सिलसिले में कुछ अन्य बातें भी पाठकों को बता देना आवश्यक प्रतीत होता है। देखा जाता है कि जब मनुष्य का प्राण बिलकुल निर्बल हो जाता है और मृत्यु निकट आ जाती है तो उसकी बुद्धि में भ्रम उत्पन्न हो जाता है, उसे कुछ का कुछ दिखाई देने लगता है। नेत्र रोगों या क्षीण दृष्टि से इन बातों का कुछ भी संबंध नहीं, जिसकी दृष्टि ठीक है और वे प्रत्यक्षतः अपने शरीर में कुछ त्रुटि नहीं देखते, उन पर भी जब मृत्यु के पूर्व लक्षण प्रकट होने लगते हैं तो शरीर एवं बुद्धि में कुछ सूक्ष्म विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। स्थूल दृष्टि से कोई मृत्यु का संकट नहीं जान सकता, किंतु सूक्ष्म ज्ञान से यह आभास प्राप्त किया जा सकता है कि हमारा प्राण निर्बल मृत्यु की भूमिका में तो प्रवेश नहीं कर रहा है ?

स्वर विज्ञान बतलाता है कि जिनके प्राण सूक्ष्म रूप से निर्बल होकर मृत्यु के निकट स्थिति पर पहुँचते हैं तो उन्हें कुछ विशेष भ्रम होने लगते हैं—(१) दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर नाक की ठीक सीध में कपाल पर रखकर नीचे की ओर उसी हाथ की कोहनी तक देखने से हाथ बहुत ही पतला नजर आता है। इसी प्रकार देखने से जब कलाई नजर न आवे, बीच में टूटी हुई मालूम पड़े तो प्रायः छह मास में मृत्यु होती है। (२) आँख बंद करके उँगली से आँख का एक किनारा दबाने से आँख के भीतर एक चमकता हुआ तारा नजर आता है, यदि यह दिखाई न पड़े। (३) स्नान के बाद जिसके हृदय, पैर और कपोल पहले सूख जायें। (४) दीपक की लौ कभी स्वर्ण समान और काले रंग की दिखाई दे। (५) घी, तेल या पानी में अपना प्रतिबिंब देखते समय केवल अपना सिर नजर आये। (६) बिना किसी कारण अचानक बहुत पतला, बहुत मोटा हो जाय। (७) हाथ से कान बंद करने पर कान

के भीतर एक प्रकार की सनसनाहट की आवाज-सी आती है, इन आवाजों का आना बंद हो जाए। (८) भवें (भृकुटी) दिखाई न पड़ें। (९) सरसों या अंडी के तेल का दिया बुझने पर जो गंध आती है, वह न आवे। (१०) मैथुन करते समय आदि में, मध्य में या अंत में हिचकियाँ आने लगें। (११) कांसे की थाली में पानी भरकर उसमें सूर्य की छाया देखो। यदि छाया दक्षिण दिशा में कटी हुई दिखाई दे तो छह महीने में, पश्चिम में कटी दीखे तो तीन महीने में, उत्तर में कटी दीखे तो दो महीने में, पूर्व में कटी दीखे तो एक महीने में। यदि उसमें छिद्र दीखें तो दस दिन में और धुएँ से ढकी हुई दीखे तो शीघ्र ही मृत्यु समझनी चाहिए।

यहाँ जो महीनों की मर्यादा बताई गई है, वह प्राणशक्ति की निर्बलता का एक माप है। ऐसा न समझना चाहिए कि यह कोई निश्चित व्यवस्था है, जैसे ज्वर में थर्मामीटर का पारा नियत नंबर से ऊँचा चला जाय तो मृत्यु-सूचक है, परंतु हजारों रोगी उससे भी अधिक उग्र ज्वर से प्रयत्नपूर्वक बचा लिये जाते हैं। उपरोक्त प्रकार के लक्षण दिखाई दें तो घबराने या भयभीत होने की जरूरत नहीं है, वरन् सावधानी के साथ अपनी शारीरिक और मानसिक दशा सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। उपरोक्त आध्यात्मिक सूचनाएँ एक प्रकार से खतरे की घंटी हैं, जो हमें सावधान रहने की सूचना देती हैं।

स्वाभाविक रूप से श्वास-प्रश्वास का बारह अंगुल जाना और बारह अंगुल आना है। एक श्वासोच्छ्वास में करीब चार सेकंड लगते हैं। दीर्घ जीवन तथा अन्य प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करने के इच्छुक को श्वास खींचने की मात्रा में वृद्धि करनी चाहिए, अन्यथा निकलने की संख्या से तो कुछ अधिक रखने का अभ्यास अवश्य करना चाहिए, जिससे आमदनी के खर्च घट जाए और कुछ पूँजी जमा होने लगे। चार सेकंड समय में एक श्वास लेने के समय में भी कुछ वृद्धि करना हितकर है। श्वास छोड़ने के बारह

अंगुल परिमाण को जितना ही घटाया जाए, उतना ही लाभ है। क्रमशः घटाने का फल इस प्रकार कहा गया है—१२ अंगुल से एक अंगुल घटाकर ११ अंगुल कर लेने पर प्राण स्थिर हो जाते हैं, दो अंगुल घटाकर १० अंगुल कर लेने पर महा आनंद प्राप्त होता है, ६ अंगुल कर लेने पर कवित्व शक्ति जाग्रत् होती है, ८ अंगुल पर वाक् सिद्धि होती है, ७ अंगुल पर दूर दृष्टि प्राप्त होती है, ६ अंगुल पर आकाश में उड़ सकता है, ५ अंगुल पर प्रचंड वेग आता है, ४ अंगुल पर सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, ३ अंगुल पर नव निद्धियाँ मिलती हैं, २ अंगुल पर अनेक रूप धारण कर सकता है, १ अंगुल पर अदृश्य हो सकता है और प्राण की गति का प्रमाण यदि केवल नख के अग्र भाग जितना रह जाये तो उसे मृत्यु का डर नहीं रहता अर्थात् अमर हो जाता है।

मनचाही संतान उत्पन्न करना

साधारणतः स्त्री के रजस्वला होने के चौथे दिन से लेकर सोलहवें दिन तक गर्भाधान के लिए उत्तम समझा जाता है। इसमें उत्तरोत्तर दिन ठीक हैं। प्रथम तीन रातें, अष्टम, एकादशी, त्रयोदशी, अमावस्या और पूर्णिमा वर्जित हैं।

शास्त्रकारों का मत है कि रजस्वला होने से चौथी रात्रि में गर्भ रहने से अल्पायु तथा दरिद्री, छठी रात्रि में साधारण आयु वाला, आठवी रात्रि में ऐश्वर्यशाली, दशमी रात्रि में चतुर, बारहवीं रात्रि में उत्तम, चौदहवीं रात्रि में उत्तम गुण संपन्न और सोलहवीं रात्रि में सर्वगुण संपन्न पुत्र उत्पन्न होता है तथा पाँचवीं रात्रि में संतान सुख वाली, सातवीं रात्रि में बंध्या, नौवीं रात्रि में ऐश्वर्यवती, ग्यारहवीं रात्रि में दुश्चरित्रा, तेरहवीं रात्रि में वर्णशंकर संतान उत्पन्न करने वाली, पंद्रहवीं रात्रि में सौभाग्यवती अथवा राजपत्नी कन्या उत्पन्न होती है।

जब पुरुष का दाहिना स्वर और स्त्री का बायाँ स्वर चल रहा हो, उस समय संयोग करने से पुत्र उत्पन्न होता है और जब स्त्री का दाहिना तथा पुरुष का बायाँ स्वर चल रहा हो, उस समय गर्भाधान करने से कन्या का जन्म होता है। इसलिए पुत्र की इच्छा करने वाले पुरुष को बाएँ करवट और कन्या की इच्छा करने वाले पुरुष को दाहिने करवट लेटने के उपरांत रति-कर्म करना चाहिए, जिससे इच्छित स्वर चलने लगें।

जो भौतिक विज्ञानी स्वर-शास्त्र के संबंध में अभी संदेहमय हैं, वे भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि काम-क्रीड़ा के समय यदि पुरुष बाएँ करवट लेटे तो उसका दाहिना अंडकोष विशेष शक्तिमय हो जाता है। कामोत्तेजना होने पर अंडकोषों की नाड़ियों द्वारा ही शरीर की धातुओं में से वीर्य निकलने की क्रिया होती है। दही से घी निकलने में जो कार्य रई करती है, वही वीर्य बनाने में अंडकोषों की नाड़ियाँ करती हैं। शरीर के दाहिने भाग में पुरुषत्व के लक्षण विशेष मात्रा में पाये जाते हैं। दाहिने अंडकोष की नाड़ियाँ भी दाहिने ही अंक का मंथन अधिक करती हैं, तद्नुसार वीर्य में भी पुरुषत्व की मात्रा अधिक होती है। इस प्रकार बाएँ करवट लेटने पर जो संभोग किया जाता है; इससे पुत्र की उत्पत्ति होती है। इस अभिमत से भी स्वर-शास्त्र के इस सिद्धांत की पुष्टि होती है।

यदि पुरुष सूर्य-स्वर में स्त्री-संग करे और संग होते ही सुषुम्ना स्वर बहने लगे तो उस समय के गर्भाधान से अंगहीन, कुरूप, नपुंसक पुत्र होता है अथवा गर्भ गिर जाता है। यदि ऋतु के आरंभ में पुरुष का सूर्य-स्वर और जल तत्त्व हो तथा स्त्री का चंद्र-स्वर तथा पृथ्वीतत्त्व हो एवं भोग के समय स्वर बदले नहीं तो बाँझ के भी पुत्र होता है। यदि भोग काल में पुरुष का सूर्य-स्वर चले और वीर्य स्खलित होते ही चंद्र-स्वर हो जाये, इस क्रम से स्त्री गर्भ धारण नहीं करेगी। अगर करेगी तो पुत्री होगी, पुत्र नहीं।

यदि पुरुष के सूर्य-स्वर में जल अथवा पृथ्वी तत्त्व मिला हो, तब गर्भाधान करने से धनवान् तथा सुखी पुत्र उत्पन्न होता है साथ ही स्त्री के चंद्र-स्वर में पृथ्वी और वायुतत्त्व हो अन्यथा नहीं। आकाशतत्त्व में भोग करने पर गर्भ नष्ट हो जाता है। यदि स्त्री के सूर्य-स्वर में पृथ्वी, अग्नि या आकाशतत्त्व हों तो भी गर्भ की हानि होती है। यदि पुरुष का चंद्र-स्वर और स्त्री का दक्षिण स्वर चल रहा हो तथा जलतत्त्व एवं पृथ्वी जल का संयोग हो, तब गर्भाधान से कन्या उत्पन्न होती है। यदि सुषुम्ना नाड़ी चलने लगे अथवा सूर्य-स्वर चल रहा हो और अग्नितत्त्व का उदय हुआ हो तो गर्भाधान करने से बंध्या भी संतानवती होती है। स्त्री-पुरुष का यदि एक ही नाक से श्वास चलता हो तो गर्भ नहीं रहता।

वायुतत्त्व में गर्भाधान हो तो दुःखी, जलतत्त्व में गर्भाधान हो तो दिशाओं में विख्यात और सुखी, अग्नितत्त्व में गर्भाधान हो तो गर्भपात अथवा अल्पजीवी और पृथ्वीतत्त्व में गर्भाधान हो तो भोगी, सुंदर और धनवान् पुत्र उत्पन्न होता है। आकाशतत्त्व का गर्भाधान व्यर्थ जाता है।

पृथ्वीतत्त्व में गर्भाधान हो तो पुत्र और जलतत्त्व में गर्भाधान हो तो कन्या उत्पन्न होती है। शेष तत्त्वों में गर्भ रहे तो गर्भ की हानि अथवा पैदा होते ही बालक की मृत्यु हो जाती है।

स्वर योग से रोग निवारण

जैसे चूहे मरने पर संक्रामक रोग (प्लेग) के फैलने का भय होता है, उसी प्रकार जब बदन में अँगड़ाइयाँ आती हैं, हड़फूटन होती है तो बुखार की सूचना मिलती है। छींकें आरंभ होना जुकाम का नोटिस है। ऐसे लक्षणों के प्रगट होने पर रोग विशेष के आक्रमण की आशंका होती है। शारीरिक रोग इस बात के चिह्न हैं कि शरीर में कहीं कुछ न्यूनता या दुर्बलता है अथवा भौतिक प्रकृति रोगों के स्पर्श के लिए कहीं से खुली हुई है, तभी तो रोग

बाहर से हमारे अंदर आते हैं। जब यह आते हैं, तभी यदि कोई इनके आने का अनुभव कर सके और इनके शरीर में प्रवेश करने से पहले ही रोक सकने की शक्ति और अभ्यास उसमें हो जाए तो मनुष्य रोगमुक्त रह सकता है। जब यह आक्रमण अंदर से उठता हुआ दिखाई देता है तो समझना चाहिए कि यह बाहर से आया हुआ रोग चेतना में प्रवेश करने से पहले पकड़ा नहीं जा सका। अच्छा होता, यदि हम रोग को प्रवेश पाने से पूर्व ही जान लेते और उसे पहले ही रोक देते। यह क्रिया स्वर-योग द्वारा सरलता तथा सफलतापूर्वक हो सकती है। समस्त रोग शरीर में सूक्ष्म चेतना और सूक्ष्म शरीर के ज्ञान तंतुमय या प्राण भौतिक कोष द्वारा प्रवेश करते हैं। जिसे भी सूक्ष्म शरीर का ज्ञान है अथवा सूक्ष्म चेतना से सचेतन है, वह रोगों को शरीर में प्रवेश होने से पूर्व ही मार्ग में से लौटा सकता है। हाँ, यह संभव हो सकता है कि निद्रावस्था अथवा अचेतन अवस्था में कोई रोग आक्रमण कर दे, किंतु फिर भी आंतरिक साधन द्वारा उसका निवारण हो सकता है। जब नियमित श्वासगति में विकृति पैदा होती है, तो जानना चाहिए कि शत्रु सेंध लगा रहे हैं। जो आक्रमण से पूर्व ही सावधान हो जाता है, वह रक्षा की तैयारी कर लेता है। इस प्रकार रोगों से बचने के बहुत अवसर उसे मिल जाते हैं।

जब स्वर में कुछ विकार पैदा होने लगे और नियमित समय अथवा गति में अंतर प्रतीत होने लगे तो सावधान हो जाना चाहिए और स्वरों को ठीक गति पर लाने का प्रयत्न करना चाहिए। स्वर बदलने के उपाय अन्यत्र लिखे जा चुके हैं, उनकी सहायता से स्वर की शुद्धि कर ली जाए तो रोगों को पूर्व ही रोका जा सकता है। आहार-विहार की विशेष सावधानी रोग-निवारण में सहायक हो सकती है।

जब रोग आ ही जाए तो देखना चाहिए कि उसका आरंभ किस स्वर से हो रहा है ? जिस स्वर में रोग की शुरूआत हुई हो,

उसे बदल लीजिये और जब तक बीमारी का प्रकोप बढ़ा हुआ रहे, उस स्वर को बदले रहिये। ऐसा करने से दस-बीस दिन में अच्छी होने वाली बीमारी आधे या चौथाई समय में ही अच्छी हो जायगी।

बीमारी का वेग जिस समय अत्यंत प्रबल हो रहा हो और रोगी वेदना से छटपटा रहा हो तो उसका चलित स्वर बदलवा देना चाहिए, इससे उसको तुरंत ही शांति मिलेगी और बढ़ा हुआ कष्ट मिट जाएगा।

उदर-शुद्धि के कुछ उपाय

सोकर उठने से पूर्व बिस्तर पर हाथ फैलाकर और बदन ढीला करके चित्त लेट जाओ। दोनों हाथों की कोहनियों से तिल्ली व जिगर को दबाकर पैरों को सकोड़ो और फिर फैला दो। इस प्रकार तीन-चार बार करने के पश्चात् ५-७ बार इधर-उधर करवट लेकर आलस्य को दूर करो। तत्पश्चात् एक या दो मिनट तक पेट के बल लेटो और तुरंत उपरोक्त स्वर नियम के अनुसार बिस्तर छोड़ दो। इस क्रिया से मल ढीला होगा, तिल्ली व जिगर की ताकत बढ़ेगी। यदि किसी को जिगर या तिल्ली की शिकायत है तो इसका प्रयोग किए बिना औषधि-लाभ प्राप्त करें। जिन्हें उपरोक्त रोग नहीं है, उन्हें भी इससे लाभ होगा। सप्ताह में दो-तीन बार करने पर भी हित होता है। बिस्तर छोड़ने से पहले पेट के बल अवश्य लेटना चाहिए। सोकर उठने तथा भोजन के पश्चात् दाहिने ओर से २-३ बार अपने मस्तिष्क को पकड़ना चाहिए। शास्त्र में इस क्रिया को 'कपाल-भाती' कहते हैं। इससे कफ दोष नाश होते हैं। इसी प्रकार सोकर उठने तथा संध्या समय तर्जनी को कानों में डालकर खुजलाना चाहिए। शास्त्र में इस क्रिया को 'कर्णभाती' कहा है, इस क्रिया से कान के रोग अच्छे हो जाते हैं।

आरंभ में सीधी करवट लेटने से यकृत पर जोर पड़ता है, जिससे पाचन शक्ति में रुकावट होती है। इसलिए भोजन पचाने

के निमित्त दक्षिण स्वर चलाने की आवश्यकता है, अतएव बाईं करवट ही लेटना उत्तम, अपितु रात्रि में जितने अधिक समय लिए पिंगला स्वर चले, उतना ही उत्तम है। जैसा कि कहा गया है—

दिन में जो चंदा चले, रात चलावे सूर।
तो यह निश्चय जानिये, प्राण गमन है दूर।।

कोई व्यक्ति संदेह करते हैं कि बाएँ करवट लेटने से दिल दबेगा तथा उसकी चाल में कमजोरी आयेगी, किंतु यह भ्रम मात्र है, क्योंकि पाचन-क्रिया ठीक रहने से हृदय की गति कदापि शिथिल नहीं हो सकती।

आमाशय या आत्म-संबंधी रोगों में साँस को छोड़ते हुए नाभि-ग्रंथि को मेरु-दंड की हड्डी से चिपकाने का प्रयत्न करना चाहिए। साँस खींचते समय पेट को खूब पिचकाना और छोड़ते समय फुला देना इस क्रिया को बार-बार करने पर पेट की खराबियाँ मिट जाती हैं और पाचन-क्रिया ठीक होने लगती है।

ज्वर—अपराजिता या मोलसिरी के कुछ पत्तों को हाथ में मसलकर किसी छोटे रूमाल में पोटली-सी बनावें और उसे बार-बार सूँघते रहें तो विषम ज्वर बहुत जल्दी अच्छा हो जाता है।

सिर-पीड़ा या आधाशीशी—आधाशीशी या सरदर्द के रोगों में नासिका द्वारा जल खींचना बहुत ही अच्छा है। इससे सिर के सब रोग अच्छे हो जाते हैं। जिस भाग में अधिक दर्द होता है, उसके विपरीत नथुने से थोड़ा-सा स्वच्छता का घृत ऊपर चढ़ाया जाय तो भी लाभ होगा।

थकान—कड़ी मेहनत पर जब शरीर में थकान आ रही हो तो दाहिने करवट लेटे रहना चाहिए, जिससे बायाँ स्वर चलने लगे। इस प्रकार थकावट बहुत जल्दी दूर हो जाएगी।

जीर्ण ज्वर—प्रातः और सायंकाल के समय नीम की पत्तियाँ सूँघने से धातुगत और जीर्ण स्वर अच्छे हो जाते हैं।

स्वर विज्ञान के अनुसार विभिन्न रोगों की अलग-अलग जानकारी, निदान या चिकित्सा जानने की जरूरत नहीं है। देखना चाहिए कि कौन स्वर चलने के समय अधिक पीड़ा होती है, उसी को बदल देना चाहिए। इससे बीमारी के अनुकूल शरीर की जो स्थिति थी, वह बदल जाती है।

यदि आपको दूसरों का इलाज करना है तो निदान कीजिए कि रोगी को चंद्र-स्वर का विकार है अथवा सूर्य-स्वर का ? बीमारी में सर्दी की अधिकता होना चंद्र-स्वर का और गर्मी की अधिकता होना सूर्य-स्वर का दोष प्रकट करता है। कोई भी समझदार आदमी रोग के लक्षणों को देखकर आसानी से जान सकता है कि बीमारी सर्दी की है अथवा गर्मी की। दूसरी परीक्षा यह है कि रोगी को कुछ देर दोनों स्वरों की स्थिति में रखकर परीक्षा करनी चाहिए। उसे जिसमें अधिक अशांति मालूम पड़े, वह स्वर भी विकार होना सूचित करता है। कई बार रोगियों का चित्त बड़ा बेचैन होता है और वे कुछ ठीक निर्णय नहीं कर पाते, इसलिए सर्दी-गर्मी के लक्षणों और रोगी के अनुमान में अंतर पड़ जाता है। ऐसी दशा में लक्षणों को ही प्रधानता देनी चाहिए एवं किस स्वर में पीड़ा बढ़ती है, इसका निर्णय रोगी पर न छोड़कर स्वयं चिकित्सक को परीक्षा करके करना चाहिए।

जब वह निश्चय हो जाए कि अमुक स्वर का विकार है, तब उसके निवारण का उपाय करना चाहिए। प्राणायाम, श्वासोच्छ्वास, क्रिया रोग-निवारण का बहुत ही उत्तम उपचार है। स्वर-योग की इस अद्‍भुत क्रिया को भारतवासी अब भूल चुके हैं, किंतु विदेशों में अब भी इसका प्रचलन है। डॉक्टर मेस्मर की अपनी आविष्कृत 'मैस्मरेजम' विद्या में इसका प्रयोग होता रहा है। इस युग में वैज्ञानिकों ने इसका पूरा अनुसंधान किया है और इसे पूर्णतः विज्ञानसम्मत बनाया है।

श्वासोच्छ्वास क्रिया का पूर्ण विवेचन 'अखंड-ज्योति' कार्यालय, मथुरा से प्रकाशित 'प्राण-चिकित्सा विज्ञान' नामक पुस्तक में दिया गया है। उसके पूरे विज्ञान को समझने के इच्छुकों को वह पुस्तक पढ़नी चाहिए। यहाँ तो कुछ साधारण से तरीके लिखे जा रहे हैं।

रोगी को जिस स्वर में कष्ट हो, अपने उस स्वर को चलाओ। जब वह स्वर शुद्ध रीति से चलने लगे तो काँच या मिट्टी के एक गिलास में स्वच्छ जल लेकर नाक से छह इंच दूर रखकर उसमें सात बार स्वर का समन्वय होने दो। गिलास को नाक की सीध में रखना चाहिए, ताकि श्वास वहाँ तक पहुँच सके, जल पर अपना प्रभाव डाल सके। छह इंच दूर इसलिए रखना चाहिए कि शरीर में से साँस के साथ निकलती हुई खराबियाँ वहाँ तक न पहुँचें। साँस में जो विषैले पदार्थ बाहर आते हैं, वे भारी होने के कारण नाक से बाहर निकलने पर वायु का साथ छोड़कर कुछ ही इंच के फासले पर इधर-उधर छितरा जाते हैं और छह इंच आगे पहुँचकर उसके विकार दूर हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि साँस के अंतिम सिरे पर पानी रखना चाहिए। जिसका स्वर घटा हुआ हो, उसे भी इतनी ही दूर लंबा स्वर उस वक्त चलाने की कोशिश करनी चाहिए। पानी को इतनी दूर नहीं रखना चाहिए। जहाँ तक कि स्वर का प्रभाव न पहुँच सके। सात श्वासों का समन्वय करके इस जल में से आधी-आधी छटाँक पानी दो-दो घंटे के अंतर पर रोगी को पिलाना चाहिए। बारह घंटे तक जल में यह असर रहेगा, इस प्रकार रोगी को स्वर की सहायता से अच्छा किया जा सकता है।

यदि चिकित्सक रोगी के निकट न हो तो स्वर-शक्ति से कुछ वस्तु को वह अभिमंत्रित कर सकता है, जो बहुत दिनों तक काम देगी। रोएँदार ऊनी फलालेन के कपड़े को २१ बार स्वर शक्ति से मंत्रित करके उसे बीमार के पीड़ित अंग पर रखना

चाहिए। यह फलालेन दो सप्ताह काम दे सकती है। दूर भेजना हो तो स्याही सोख कागज (ब्लाटिंग पेपर) को मंत्रित कर सकते हैं। बच्चों के लिए ताबीज या रक्षा सूत्रों को मंत्रित किया जा सकता है। वैद्य लोग यदि अपनी दवाओं से इसी प्रकार मंत्रित कर लिया करें तो उनकी औषधियाँ लाभप्रद हो सकती हैं।

अन्य शास्त्रों के कुछ अनुभूत प्रयोग

स्वर ग्रंथों में कई प्रकरण ऐसे मिलते हैं, जिनका स्पष्टतः श्वास क्रिया से कोई विशेष संबंध नहीं है। मालूम होता है कि स्वरशास्त्रियों ने चिकित्सा अथवा तंत्र-ग्रंथों के इन प्रयोगों को बहुत उपयोगी पाकर अपनी-अपनी पुस्तकों में सम्मिलित कर लिया है, उनका परिचय नीचे दिया जाता है। पाठक इससे लाभ उठा सकते हैं—

(१) सिर दर्द होने पर दोनों हाथों की कोहनियों को ऊपर धोती के किनारे अथवा रस्सों से खूब कसकर बाँध देना चाहिए। ऐसा करने से पाँच-सात मिनट में ही सिर दर्द जाता रहेगा। कोहनी जोर से बाँधनी चाहिए, जिससे रोगी को कुछ तकलीफ मालूम होने लगे और उसका ध्यान सिर दर्द को भूलकर उसी स्थान पर केंद्रित हो जाए।

(२) प्रतिदिन जब मलमूत्र त्याग करो, तब दाँतों की दोनों पंक्तियों को मिलाकर जोर-जोर से दबाये रखें। ऐसा करने से दाँत मजबूत होते हैं और उनके रोग मिट जाते हैं।

(३) भोजन के उपरांत हाथ-मुँह धोकर लकड़ी की कंघी से सिर के बाल काढ़ने चाहिए। कंघी इस तरह चलानी चाहिए, जिससे काँटे कुछ-कुछ सिर में चुभें। इससे सिर संबंधी कोई बीमारी तथा बाल व्याधि उत्पन्न होने का भय नहीं रहता।

(४) कभी गर्मी में कहीं बाहर जाना हो तो तौलिए से दोनों कानों को ढक लेना चाहिए। इससे लू लगने का डर नहीं रहता।

(५) स्मरण-शक्ति कम हो जाने पर सिर के ऊपर लकड़ी के तख्ते का एक छोटा-सा टुकड़ा रखो और उसको लकड़ी की छोटी-सी हथौड़ी से धीरे-धीरे ठोको। पाठकों ने अनुभव किया होगा कि लोग कभी-कभी किसी भूली हुई बात को स्मरण करने के लिए सिर खुजलाते हैं अथवा सिर में पेंसिल ठोकने लगते हैं।

(६) शौच-क्रिया के पश्चात् हाथ-मुँह धोकर मुँह में जितना पानी भर सको, भर लो और पानी को मुँह में ही रोककर हथेली में ठंडा जल भरकर खुली हुई आँखों पर खूब छिड़को। पाँच-सात बार ऐसा करने के बाद मुँह में भरा हुआ पानी फेंक दो। इसी प्रकार भोजनोपरांत भी यह क्रिया करनी चाहिए, इससे आँखों की बीमारी नहीं होती और ज्योति ठीक रहती है।

(७) कुछ समय पद्मासन से बैठकर दाँतों की जड़ में जीभ का अग्रभाग दबाकर रखने से सब तरह की व्याधियाँ नष्ट होती हैं।

(८) रक्त अपामार्ग (लाल औंगा) की जड़ को हाथ में बाँध रखने से भूत, प्रेत आदि की बाधा मिट जाती है।

(९) प्रातः-सायं पद्मासन से बैठकर नाभि की ओर टकटकी लगाकर देखते हुए नाभि में वायु धारण और नाभि कंद का ध्यान करने से मंदाग्नि, अजीर्ण, अतिसार आदि पेट के रोग दूर हो जाते हैं।

(१०) प्यास से व्याकुल होने पर ऐसा ध्यान करना चाहिए कि जीभ के ऊपर कोई खट्टी चीज रखी हुई है। शरीर गर्म होने पर ठंडी वस्तु का और शीतल होने पर गर्म वस्तु का ध्यान करना चाहिए।

(११) ललाट के ऊपर पूर्ण चंद्र के समान ज्योति का ध्यान करने से आयु बढ़ती है और कुष्ठ आदि रोग दूर होते हैं। सिर गर्म होने या घूमने पर मस्तक में श्वेत वर्ण शरद् चंद्र का ध्यान करने से कुछ ही मिनट में शांति मिलती है।

(१२) सर्वथा दृष्टि के आगे पीतवर्ण की उज्ज्वल ज्योति का ध्यान करने से बिना औषधि सब तरह के रोग अच्छे हो जाते हैं और देह में परिपूर्ण यौवन बना रहता है।

(१३) श्याम वर्ण का ध्यान करने से वायु, लाल वर्ण का ध्यान करने से पित्त और श्वेत वर्ण का ध्यान करने से कफ के दोष दूर होते हैं।

स्वर ग्रंथों में वशीकरण आदि की क्रियाओं का भी उल्लेख है। उनका सर्व-साधारण के लिए कुछ प्रयोजन न देखकर इस पुस्तक में उल्लेख नहीं किया गया है।

तत्त्व ज्ञान से दिव्य दृष्टि

इस समय स्वर-योग संबंधी जो ग्रंथ उपलब्ध होते हैं, उनमें प्रश्नोत्तर या भविष्य कथन के संबंध में भी कुछ उल्लेख मिलता है। जिस प्रकार रमल विद्या या कोष्ठों पर हाथ रखवाकर अथवा नामाक्षर आदि गिनकर फलित ज्योतिष का कुछ भाग बहुत सरल बना लिया गया है, उसी प्रकार के कुछ २ प्रसंग इस विद्या में भी पाये जाते हैं। उनमें से कुछ का सारांश इस प्रकार है—

प्रश्नकर्ता को प्रश्न विचारक के पास कोई पुष्प अथवा रक्त वर्ण की वस्तु लानी चाहिए, जिससे उसके आते ही विचारक यह समझ लें कि आगंतुक प्रश्नकर्ता है और स्वर आदि के विषय में सतर्क हो जाये।

जब प्रश्न विचारने वाले का इड़ा (बायाँ) स्वर चल रहा हो और प्रश्नकर्ता ऊपर, सामने या बाईं ओर से प्रश्न करे अथवा प्रश्न-विचारक के सूर्य स्वर में प्रश्नकर्ता नीचे, पीछे अथवा दाहिनी ओर से प्रश्न करे तो कार्य की सफलता है। इसके विपरीत हो तो असफलता समझनी चाहिए।

विचारक के पूरक में प्रश्न करना शुभ है तथा रेचक में अशुभ अर्थात् जिस समय प्रश्न करे और विचारक श्वास भीतर खींचता हो तो शुभ और बाहर छोड़ता हो तो अशुभ।

विचारक श्वास लेकर कुंभक (रुकी हुई श्वास) से एक पुष्प ऊपर फेंके। यदि पुष्प चलित स्वर की ओर गिरे तो प्रश्न की सफलता समझो और यदि अचलित स्वर की ओर गिरे तो असफलता समझनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता प्रश्न पूछने के समय यदि पूर्व तथा उत्तराभिमुख हो और चंद्र स्वर चलता हो अथवा दक्षिण-पश्चिम की ओर उसका मुख हो और सूर्य-स्वर चलता हो तो शुभ समझो अन्यथा अशुभ। यदि चलित स्वर की ओर प्रश्न किया जाए तो कार्य कैसा ही कठिन हो, लाभ होगा। चलित स्वर की ओर से कर्कश स्वर में प्रश्न किया जाए तो लाभ अवश्य होगा, किंतु कष्ट के साथ।

प्रश्नकर्ता यदि पहले अचलित स्वर से प्रश्न करे और फिर चलित स्वर की ओर आ बैठे तो कठिनाई के साथ सफलता मिलेगी। प्रश्नकर्ता को नीचे खड़ा होकर नम्र वचनों से प्रश्न पूछना शुभ है और ऊँचे स्थान पर कठोर शब्दों में पूछे तो अशुभ है।

अमुक स्त्री के गर्भ रहा है या नहीं ? ऐसा प्रश्न बंद स्वर की ओर से किया जाय तो गर्भ है ऐसा समझना चाहिए अन्यथा नहीं।

गर्भ में लड़का है या लड़की ? इस प्रश्न के जबाव में प्रश्नकर्ता का यदि बायाँ स्वर चल रहा हो और अपना दाहिना, तो लड़का होकर मर जाएगा, ऐसा जानना चाहिए। यदि दोनों ही के दक्षिण स्वर हों तो लड़का होगा और आनंद मंगल होगा। प्रश्नकर्ता का स्वर दाहिना हो और उत्तरदाता का बायाँ, तो लड़की होकर मर जाएगी। यदि सुषुम्ना में प्रश्न किया जाए तो गर्भपात होगा या माता कष्ट भोगेगी।

इसी प्रकार के या थोड़े-बहुत हेर-फेर से युद्ध, यात्रा, परदेशी का आगमन, मित्रता, विग्रह, वर्ष-फल आदि के प्रसंग आते हैं। गंभीर दृष्टि से विचार करने पर ऐसा मालूम होता है कि जैसे ज्योतिष विद्या के गंभीर विचार और कठिन गणित से बचने के लिए लोगों ने सस्ते फलित मार्ग रच डाले, उसी प्रकार स्वर के चिरकालीन अभ्यास और विशेष यत्नपूर्वक प्राप्त होने वाली सिद्धि के झंझट से बचने के लिए वह सरल तरीका निकला है, किंतु इस प्रकार के बाल प्रयत्न से परोक्ष ज्ञान की देव-दुर्लभ गुत्थी नहीं सुलझ सकती। साधारणतः एक स्वर एक घंटे चलता है। मान लीजिए कि इस स्वर का फल अशुभ होता हो और इस एक घंटे में ५० व्यक्ति प्रश्न पूछने आयें तो क्या उन सबको ही अशुभ फल बता दिया जायेगा ? यदि कोई महानुभाव इस प्रकार की फलित विद्या फैलाएँगे तो अपयश ही मिलेगा और साथ ही इस महाविज्ञान से समाज को भारी क्षति पहुँचेगी।

मनुष्य का साधारण ज्ञान बहुत ही कम है, किंतु उसके अंदर अप्रत्यक्ष कई गुप्त बातों को जानने की शक्ति छिपी हुई पड़ी है। संजय महाभारत का सारा दृश्य बहुत दूर रहते हुए भी अपनी दिव्य दृष्टि से देखते थे और उसका वर्णन धृतराष्ट्र को सुनाते थे। इसी प्रकार दिव्य श्रवण, दिव्य ज्ञान आदि के असंख्य उदाहरण हमारे प्राचीन इतिहास में मिलते हैं।

अखिल विश्व ब्रह्मांड आकाशतत्त्व (ईथर) से परिपूर्ण भरा हुआ है। संसार में जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष घटनाएँ होती हैं, उनके कंपन उठते रहते हैं। किसी कार्य का स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होना यह तो उसकी अंतिम अवस्था है। यथार्थ में उस कार्य का आरंभ बहुत ही पहले हो जाता है। हम दुकान खोल लेते हैं, दुकान का उद्घाटन देखना हो तो सूक्ष्म दृष्टि से अंतिम कार्य हुआ। उसका आरंभ तो बहुत दिन पूर्व—तभी से हो रहा था, जबसे कि उस प्रकार के विचार हमारे मस्तिष्क में उठने शुरू हुये थे। उन

विचार-कंपनों द्वारा दुकान खुलने तक बड़ा भारी कार्य होता रहता है। यद्यपि हम इसे नहीं जान पाते, तो भी कार्यों का होता रहना निस्संदेह है। किसी घटना के घटित होने से पूर्व ईथर में तत्संबंधी जो हलचलें होती हैं, उनके अप्रत्यक्ष और गुप्त भाव हमारे पास तक पहुँचते रहते हैं। यदि किसी का मन इतना स्वच्छ हो कि वह इन सूक्ष्म कंपनों के प्रवाह को समझ सके तो निस्संदेह गुप्त और भविष्य में होने वाली घटनाओं को वह जान सकता है।

हमारी नाक, कान, आँख आदि स्थूल इंद्रियाँ बहुत ही मामूली शक्ति रखती हैं। आँखें केवल उन्हीं पदार्थों को देख सकती हैं, जिनसे नेत्रों के ज्ञान-तंतुओं से टकराने वाली एक विशेष प्रकार की ज्योति निकलती है। इसके अतिरिक्त वायु आदि बहुत-से ऐसे मामूली और मोटे पदार्थ हैं, जिनमें से नेत्रों के अनुकूल प्रकाश कंपन उत्पन्न नहीं होते, अतएव उनकी उपस्थिति दृष्टिगोचर होती है। कानों से एक विशेष दर्जे के धीमे शब्द सुनाई पड़ते हैं, प्रति सेकंड तीस से लेकर पचास हजार एक बार जिनकी थरथराहट होती है, केवल वही शब्द हम सुन सकते हैं। इससे ऊँचे और नीचे शब्द को सुनने में यह कान असमर्थ हैं। रक्तवर्ण से लेकर ऊदे रंग तक के सात रंग और उनके मिश्रणों को ही आँखें पहचानती हैं। इनके अतिरिक्त जो हजारों प्रकार के रंग की सूक्ष्म वस्तुएँ हैं, वह पहचानने में नहीं आतीं। फिर जो मामूली इंद्रिय शक्ति हम लोगों में होती है, वह भी सबमें एक-सी नहीं होती। किसी की तेज होती है, तो किसी की सुस्त।

वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि यदि हमारी इंद्रिय शक्ति को कुछ और सहायता मिल जाए तो वे वर्तमान ज्ञान की अपेक्षा बहुत अधिक बातें जान सकती हैं। रोन्टजन रश्मियों की सहायता से गैस और तमोमय पदार्थों का अंतराल देखा जा सकता है। इन किरणों की सहायता से संदूक में बंद चीजों को देख सकते हैं। बंद चिट्ठियों को पढ़ सकते हैं, दीवार की आड़ में रखी हुई चीजों

को देख सकते हैं। एक्सरेज द्वारा शरीर के अंदर के चित्र रोज उतरते हुए हम देखते हैं।

मनुष्य का पिंड-देह स्थूल देह का सूक्ष्म भाग है और उसके अंतर्गत है, इसलिए उसकी ज्ञानेंद्रियों में अखिल प्रकाश भरा रहता है। यदि इंद्रियों की सूक्ष्म शक्तियों को ऐसा जाग्रत् कर लिया जाए कि वह अपने आंतरिक आकाश में होने वाले कंपनों की गतिविधि का कुछ अधिक अनुभव कर सके, तो निश्चय ही उसे वैसा ही दिव्य ज्ञान प्राप्त हो सकता है, जैसा कि कुछ सिद्ध योगियों में देखा जाता है।

अध्यात्म विद्या के मर्मज्ञों का कथन है कि शरीर में मूलाधार आदि चक्र हैं। यह दिव्य शक्तियों के सूक्ष्म केंद्र हैं। इन केंद्रों को इंद्रिय नहीं समझा जाता, क्योंकि इनसे आँख-कान की तरह देख या सुन नहीं सकते, फिर भी यह अंतर्जगत् की इंद्रियाँ ही हैं। यह एक प्रकार के भँवर हैं। जैसे नदी के भँवरों में बहता हुआ पानी एक परिक्रमा देकर आगे बढ़ता है, उसी प्रकार सूक्ष्म कंपन अपने अनुकूल भँवरों (चक्रों) की परिक्रमा हमारे शरीर के अंदर भी करते हैं। अद्भुत बातों का जानना असंभव नहीं है, केवल दर्जे का भेद है। जब हम ऊँचे दर्जे में पहुँच जाते हैं, तो विश्व का भूगोल पढ़कर बहुत बातें मालूम कर लेते हैं, किंतु उन सब बातों को उस समय नहीं समझ सकते, जब छोटे दर्जे में पढ़ते हैं।

स्वर-योग का तत्त्व-विज्ञान केंद्र स्थानों, चक्रों में स्थित इंद्रियों को प्रोत्साहित, जाग्रत् और स्वच्छ करता है, जिससे संसार की विभिन्न प्रकार की घटनाओं के संबंध में जो कंपन उठ रहे हैं, उनका ज्ञान प्राप्त किया जा सके। तत्त्व ज्ञान का अभ्यासी अपनी सूक्ष्म ज्ञानेंद्रियों की शक्ति को उसी प्रकार उन्नत करता जाता है, जैसा छोटा बालक धीरे-धीरे अपनी स्थूल इंद्रियों को प्रबुद्ध बनाता जाता है। योगशास्त्र के आद्य आचार्य भगवान् शंकर ने परोक्ष विज्ञान के एक मार्ग तत्त्व ज्ञान का उपदेश किया है। वह प्रायः

वर्तमान ग्रंथों में जिस प्रकार मिलता है, उसका कुछ सारांश आगे दिया जा रहा है।

परोक्ष ज्ञान के लिए स्वर शास्त्र के अंतर्गत एक बहुत ही गुप्त साधना है। वह इतनी महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है कि उसका उपयुक्त नाम 'तत्त्वज्ञान' रखना पड़ा है। तत्त्व का अर्थ सार भाग, मूल वस्तु है। आध्यात्मिक विज्ञान में तत्त्वज्ञान शब्द का उपयोग वहाँ होता है, जहाँ आत्मा और ईश्वर के संबंध की चर्चा होती है। भौतिकशास्त्री प्रकृति विज्ञान के मूलभूत कारणों को तत्त्व कहते हैं। स्वर-योग में ऐसी ही अंतरंग साधनाएँ हैं, जिन्हें महत्त्व के अनुरूप ही 'तत्त्वज्ञान' नाम मिला है।

षट्चक्र भेदन की भाँति स्वर-विज्ञान में तत्त्वों की उपासना करनी पड़ती है और जानना होता है कि इसमें इस समय कौन-सा तत्त्व विद्यमान है ? तत्त्वों की कुछ जानकारी निम्न है—

पृथ्वीतत्त्व

इस तत्त्व का स्थान मूलाधार चक्र अर्थात् गुदा से दो अंगुल अंडकोषों की ओर हटकर सींवन में स्थित है। सुषुम्ना का आरंभ इसी स्थान से होता है। प्रत्येक तत्त्व चक्र का आकार कमल के पुष्प जैसा है। यह 'भूलोक' का प्रतिनिधि है। पृथ्वीतत्त्व का ध्यान इसी मूलाधार चक्र में किया जाता है।

पृथ्वीतत्त्व की आकृति चतुष्कोण, रंग पीला, गुण गंध है, इसलिए इसको जानने की इंद्रिय नासिका तथा कर्मेंद्रिय गुदा है। शरीर में पीलिया, कमलवायु आदि रोग इसी तत्त्व की विकृति से पैदा होते हैं। भय आदि मानसिक विकारों में इसकी प्रधानता होती है। इस तत्त्व के विकार मूलाधार चक्र में ध्यान स्थित करने से अपने आप शांत हो जाते हैं।

साधन विधि—सवेरे जब एक पहर अंधेरा रहे, तब किसी शांत स्थान और पवित्र आसन पर दोनों पैरों को पीछे की ओर मोड़कर उन पर बैठें। दोनों हाथ उलटे करके घुटनों पर इस

प्रकार रखो। जिससे उंगलियों के छोर पेट की ओर रहें। फिर नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखते हुए मूलाधार चक्र में 'लं' बीज वाली चौकोर पीले रंग की पृथ्वी का ध्यान करें। इस प्रकार करने से नासिका सुगंधि से भर जाएगी और शरीर सोने के समान कांति वाला हो जाता है। ध्यान करते समय ऊपर कहे हुए पृथ्वीतत्त्व के समस्त गुणों को अच्छी तरह ध्यान में लाने का प्रयत्न करना चाहिए और 'लं' इस बीज मंत्र का मन ही मन (शब्दरूप से नहीं, वरन् ध्वनिरूप से) जप करते जाना चाहिए।

जलतत्त्व

पेडू के नीचे, जननेंद्रिय के ऊपर मूल भाग में स्वाधिष्ठान चक्र में जलतत्त्व का स्थान है। यह चक्र 'भुवः' लोक का प्रतिनिधि है। रंग श्वेत, आकृति अर्ध चंद्राकार और गुण रस है। कटु, अम्ल, तिक्त आदि सब रसों का स्वाद इसी तत्त्व के कारण आता है। इसकी ज्ञानेंद्रिय जिह्वा और कर्मेंद्रिय लिंग है। मोहादि विकार इसी तत्त्व की विकृति से होते हैं।

साधन विधि—पृथ्वीतत्त्व का ध्यान करने के लिए बताई हुई विधि में आसन पर बैठकर 'बं' बीज वाल अर्ध चंद्राकार चंद्रमा की तरह कांति वाले जलतत्त्व का स्वाधिष्ठान चक्र में ध्यान करना चाहिए। इससे भूख-प्यास मिटती है और सहन-शक्ति उत्पन्न होती है।

अग्नितत्त्व

नाभि स्थान में स्थित मणिपूरक चक्र में अग्नितत्त्व का निवास है। यह 'स्वः लोक' का प्रतिनिधि है। इस तत्त्व की आकृति त्रिकोण, रंग लाल, गुण रूप है। ज्ञानेंद्रिय नेत्र और कर्मेंद्रिय पाँव हैं। क्रोधादि मानसिक विकार तथा सूजन आदि शरीरिक विकार इस तत्त्व की गड़बड़ी से होते हैं। इसके सिद्ध हो जाने पर मंदाग्नि, अजीर्ण आदि पेट के विकार दूर हो जाते हैं और कुंडलिनी शक्ति के जाग्रत् होने में सहायता मिलती है।

साधन विधि—नियत आसन पर बैठकर 'रं' बीज मंत्र वाले, त्रिकोण आकृति के और अग्नि के समान लाल प्रभा वाले अग्नि तत्त्व का मणिपूरक चक्र में ध्यान करें। इस तत्त्व के सिद्ध हो जाने पर अत्यंत अन्न ग्रहण करने की शक्ति, अत्यंत पीने की शक्ति और ध्रुव तथा अग्नि के सहन करने की शक्ति आ जाती है।

वायुतत्त्व

यह तत्त्व हृदय देश में स्थित अनाहत चक्र में है एवं 'महःलोक' का प्रतिनिधि है। रंग हरा, आकृति षट्कोण तथा गोल दोनों तरह की है। गुण स्पर्श, ज्ञानेंद्रिय त्वचा और कर्मेंद्रिय हाथ हैं। वात, व्याधि, दमा आदि रोग इसी विकृति से होते हैं।

साधन विधि—नियत विधि से स्थित होकर 'यं' बीज वाले, गोलाकार, हरी आभा वाले वायुतत्त्व का अनाहत चक्र में ध्यान करें। इससे आकाश गमन तथा पक्षियों की तरह उड़ना सिद्ध होता है।

आकाशतत्त्व

शरीर में इसका निवास विशुद्ध चक्र में है। यह चक्र कंठ स्थान में 'जनः लोक' का प्रतिनिधि है। इसका रंग नीला, आकृति अंडे की तरह लंबी गोल, गुण शब्द, ज्ञानेंद्रिय कान तथा कर्मेंद्रिय वाणी है।

साधन विधि—पूर्वोक्त आसन पर से 'हं' बीज मंत्र का जप करते हुए चित्र-विचित्र रंग वाले आकाशतत्त्व का विशुद्ध चक्र में ध्यान करना चाहिए। इससे तीनों कालों का ज्ञान, ऐश्वर्य तथा अणिनादि अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

नित्यप्रति पाँचों तत्त्वों का छह मास तक अभ्यास करते रहने से तत्त्व सिद्ध हो जाते हैं फिर तत्त्व को पहचानना सरल हो जाता है।

यह बताया जा चुका है कि तत्त्वों को जानने के लिए किस प्रकार अभ्यास करना चाहिए ? अब यह बताते हैं कि तत्त्व को पहचानने के स्थूल उपाय क्या हैं ? पाठकों को जानना चाहिए कि स्वर के साथ-साथ तत्त्वों का उदय भी होता है। जब तक एक स्वर चलता है, तब तक पाँचों तत्त्व क्रमशः एक-एक बार उदय होते हैं और अपने समय को पूरा करके अस्त हो जाते हैं।

तत्त्व परीक्षा के मुख्य प्रकार ६ हैं—

(१) **श्वास द्वारा**—तत्त्वों के उदय के साथ नथुने में चलते हुए श्वास की गति बदलती है। यदि नथुनों के बिल्कुल बीच में वायु चल रही हो तो पृथ्वीतत्त्व, नीचे की ओर चल रहा हो तो जलतत्त्व, तिरछा अर्थात् एक ओर चल रहा हो तो वायुतत्त्व, ऊपर की ओर चल रहा हो तो अग्नितत्त्व और यदि चारों ओर घूमता हुआ चल रहा हो तो आकाशतत्त्व का उदय जानना चाहिए।

(२) **आकृति द्वारा**—किसी स्वच्छ दर्पण के ऊपर जोर से नाक द्वारा वायु छोड़िये। इससे दर्पण के ऊपर श्वास की भाप से कुछ आकृति बन जाएगी, इससे तत्त्व की परीक्षा हो सकती है। यदि चौकोर आकृति बने तो पृथ्वी, अर्ध-चंद्राकार बने तो जल, त्रिकोण बने तो अग्नि, लंबाई लिये हुए गोल बने तो वायु और छोटी बिंदियाँ-सी बनें तो आकाशतत्त्व जानना चाहिए।

(३) **मूल स्थान द्वारा**—पीछे बताया जा चुका है कि शरीर के किस स्थान पर किस तत्त्व का मूल स्थान है ? ध्यान करने पर जिस स्थान में विशेष चेतना मालूम पड़े और तत्त्व के निर्धारित रंग-रूप प्रत्यक्ष प्रदर्शित होने लगें तो उसी स्वर का उदय समझना चाहिए।

(४) **लंबाई द्वारा**—खूब अच्छी तरह बारीक धुनी हुई रुई या बारीक धूल हथेली पर उस नथुने के पास धीरे-धीरे ले जानी चाहिए, जिससे श्वास चल रही हो। जितनी दूरी पर प्रथम रुई या धूल श्वास की हलचल के कारण जरा भी हिलने लगे, वहीं ठहर

जाओ और नाक से उसकी दूरी नाप लो, यदि वह १२ अंगुल हो तो पृथ्वी, १६ अंगुल हो तो जल, ४ अंगुल हो तो अग्नि, ८ अंगुल हो तो वायु और २० अंगुल हो तो आकाशतत्त्व उदय जानना चाहिए।

(५) स्वाद द्वारा—ध्यानपूर्वक परीक्षा करने से मालूम होता है कि बिना कुछ खाये हुए भी जिह्वा में अलग-अलग समयों में अलग-अलग रसों के स्वाद आते रहते हैं। सूक्ष्म दृष्टि से परीक्षा करने पर यदि मुख में मीठा स्वाद प्रतीत हो तो पृथ्वी, कसैला हो तो जल, कड़ुआ हो तो अग्नि, खट्टा हो तो वायु और तीखा हो तो आकाशतत्त्व समझना चाहिए।

(६) समय द्वारा—साधारण एक स्वर एक घंटा चलता है, जिसमें पृथ्वी तत्त्व २० मिनट, जलतत्त्व १६ मिनट, अग्नितत्त्व १२ मिनट, वायुतत्त्व ८ मिनट और आकाशतत्त्व ४ मिनट रहता है।

तत्त्व की परीक्षा के लिए जहाँ ध्यानावस्थित होकर परीक्षा करने का उल्लेख है, वहाँ षड्मुखी मुद्रा द्वारा ध्यान करना समझना चाहिए। दोनों कानों पर दोनों हाथ के अँगूठे, दोनों आँखों पर दोनों हाथों की तर्जनी और मध्यमाएँ, दोनों नथुनों पर दोनों अनामिकाएँ और दोनों होठों के बीच अर्थात् मुँह में कनिष्ठकाएँ लगाकर ध्यान करना चाहिए। स्वर संबंधी ध्यान के लिए यही मुद्रा उपयुक्त बताई गई है।

किसी प्रश्न का उत्तर देने के लिए जब विचारक पाँच मिनट तक एकाग्रता कर ले, तब देखे कि मेरा किस स्वर में कौन तत्त्व उदय हो रहा है, उसी के अनुसार उत्तर देना चाहिए।

यदि सूर्य स्वर में अग्नितत्त्व हो, तब कार्य सिद्ध न होगा। यदि अग्नि और पवन मिले हुए हों तो शीघ्र सिद्धि होगी, पवन हो तो कुछ विलंब में होगी, पृथ्वी और जलतत्त्व हर कार्य में शुभ सूचक हैं। सूर्य स्वर में आकाशतत्त्व हो, तो भयंकर हानि की संभावना रहता है।

चंद्र-स्वर में पृथ्वीतत्त्व हो तो १२ दिन में, जल और पृथ्वी-तत्त्व हो तो १३ दिन में, केवल जल हो तो ३ दिन में, पवन हो तो ८ दिन में सिद्धि होती है। अग्नितत्त्व में हानि और आकाश में अनिष्ट की आशंका रहती है।

पृथ्वीतत्त्व में स्थिर कार्य, जलतत्त्व में चलते-फिरते कार्य, अग्नितत्त्व में क्रूर कर्म, पवनतत्त्व में हत्या, कूट-नीति आदि सफल होते हैं एवं आकाशतत्त्व में सब कार्यों में असफलता होती है।

पृथ्वी और जलतत्त्व में सिद्धि तत्त्व से मृत्यु, वायु से नाश और आकाश में निष्फलता प्राप्त होती है। पृथ्वीतत्त्व में देर से लाभ, जलतत्त्व में तत्क्षण लाभ, वायु और अग्नि में हानि तथा आकाश में निराशा होती है।

चंद्र-स्वर में पृथ्वी और जलतत्त्व तथा सूर्य स्वर में अग्नि-तत्त्व जिस समय हो उस समय अच्छे-बुरे सब कार्यों की सिद्धि होती है। दिन में पृथ्वीतत्त्व से और रात्रि में जलतत्त्व से लाभ होता है। जीवन, जय, लाभ, कृषि, धन उपार्जन, मंत्र सिद्धि, युद्ध, प्रश्न, गमन, आगमन में पृथ्वीतत्त्व श्रेष्ठ है। पृथ्वीतत्त्व में बहुतों के साथ गमन जल और वायु में अकेले गमन, अग्नि में दो मनुष्यों के साथ और आकाश में कहीं भी गमन न करना चाहिए। पूर्व दिशा में पृथ्वी, पश्चिम में जल, दक्षिण में अग्नि और उत्तर में वायुतत्त्व बलवान् होते हैं। इन दिशाओं संबंधी कार्य इन्हीं तत्त्वों में करने पर बहुत शुभ होते हैं। वायुतत्त्व में युद्ध करने पर सफलता मिलती है।

सम्वत्सर जिस दिन प्रारंभ होता हो, उस दिन कुछ समय एकाग्रता करने पर तत्त्व के उदय का शुभ-अशुभ फल देखते हुए आगामी वर्ष का फल जाना जा सकता है।

शुभ और अशुभ के फल तो तत्त्व विद्या के आरंभिक अभ्यासियों के लिए थोड़ा-सा पथ-प्रदर्शन मात्र है। कुछ अधिक अभ्यास होने पर तो उसे गुरु बातों का प्रत्यक्ष अनुभव अपने आप

होने लगता है। उस समय यह पुस्तक पीछे रह जाती है और अभ्यास बहुत आगे बढ़ जाता है।

उसी स्थिति को ध्यान में रखते हुए स्वर शास्त्र ने इस महत्त्वपूर्ण विज्ञान की प्रशंसा करते हुए कहा है कि—

तत्त्व रूप गतिः स्वादो मंडलं लक्षणान्वितम्।
स वेत्ति मानवो लोके संसर्गादपि मार्गवित्।।

जो व्यक्ति तत्त्वों के रूप, गति, स्वाद, मंडल और लक्षण इन सबको जानता है; वह तत्त्वों के हेल-मेल में भी पृथक्-पृथक् मार्गों को जान लेता है।

स्वर ज्ञानं नरे यत्र लक्ष्मीः पाद तले भवेत्।
सर्वत्र च शरीरेऽपि सुखं तस्य सदा भवेत्।।

जिस मनुष्य को स्वर ज्ञान है, लक्ष्मी उसके चरणों के नीचे रहती है और उसका शरीर भी सर्वत्र सदा सुखी रहता है।

□ □

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा